प्रतिक्रमण-आलोचना-सामयिक पाठ

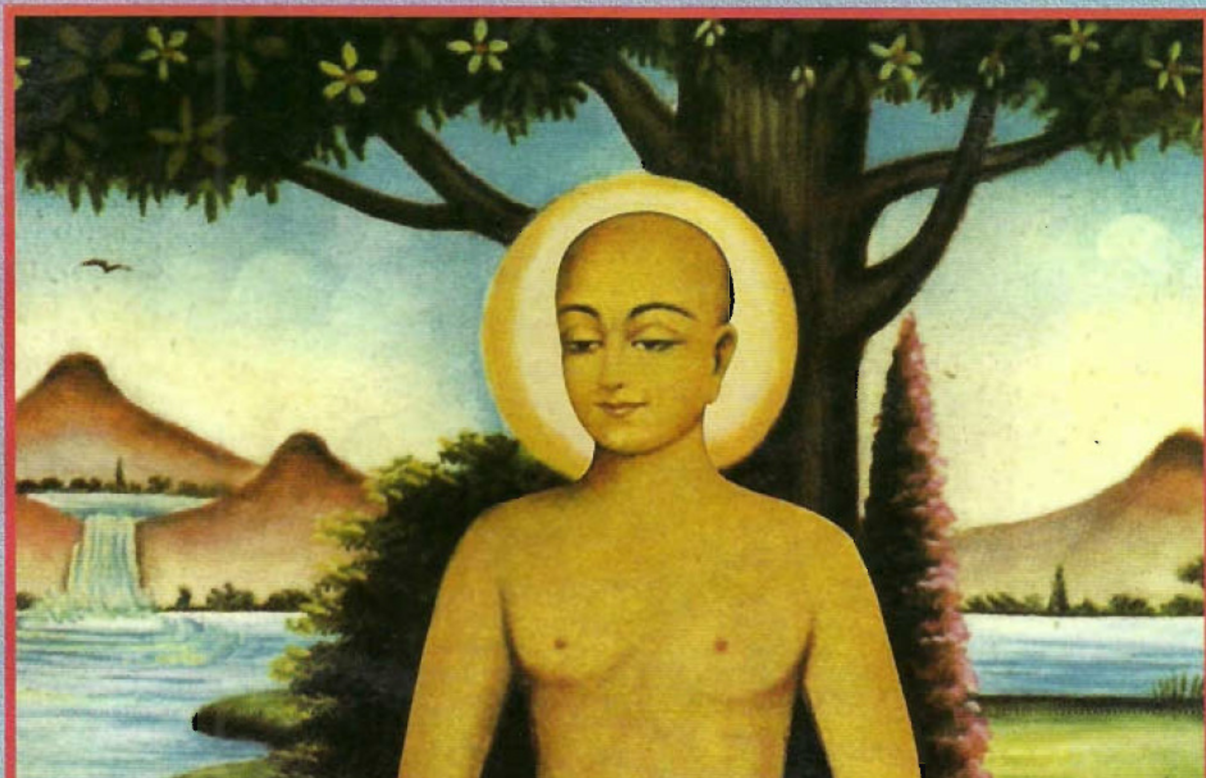

णिच्चं पच्चकखाणं कुव्वदिं णिच्चं पडिक्कमदि जो य।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरितं हवदि चेदा॥

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली अंतर्गत
पूज्य कहान गुरुदेव स्मृति ग्रंथ प्रकाशन पुष्प-37

ॐ

प्रतिक्रमण सामायिक आलोचना पाठ

❀ प्रकाशक ❀

श्री जैन मुमुक्षु महिला मंडळ

कहाननगर, लाम रोड,
देवलाली

❀ अंतर्गत ❀

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट

कहाननगर, लाम रोड,
देवलाली

प्रथम आवृत्ति : प्रत 1000 कहान संवत-11 विक्रम संवत 2058
वीर संवत 2528 इ.स. 2002

प्राप्तिस्थान :

- **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट**
  कहाननगर, लाम रोड,
  देवलाली-422401

- **श्री सीमंधर भगवान जिनालय**
  173/175, मुंबादेवी रोड,
  मुंबई-400002

मूल्य : रू. २६=००

मुद्रक :

स्मृति ओफसेट

सोनगढ-364 250

✆ : (02846) 44081

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

प्रस्तावना (आमुख)

परम पूज्य कहान गुरुदेवश्रीकी स्मृति स्मारकरूपमें देवलालीके मध्यमें अति मनोरम्य, शांत वातावरणमें पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट नवनिर्मित हुआ है। जो पूज्य गुरुदेवश्रीकी अति प्रभावनाका निमित्त हुआ है। इस संकुलनमें न्यूनतम सुंदर सुंदर शिबिर, विधान तथा अनेक रोचक प्रवृत्तियाँ नित्य-प्रति चल रही हैं। जिसमें बालकसे लेकर अनेक मुमुक्षुओं लाभान्वित हुए हैं।

अति सुंदर आयतनोंयुक्त महाराष्ट्र प्राँत देवलाली एक तीर्थधाम बन गया है। यहाँ प्रतिदिन यात्रियोंका आवागमन रहता है। श्री दिगंबर महावीर मंदिर, आदिनाथ त्रिमूर्तिसे संयुक्त श्री परमागममंदिरमें अति मनोज्ञ शांतिनाथ भगवानकी मूर्ति तथा अष्ट बलभद्र भगवंत खड्गासन रूपमें बिराजमान हैं। अति सुंदर कांचकी चित्रकारीवाली दिवालोंसे समवसरंणमंदिरमें बिराजमान चौमुख मुद्राधारी श्री सीमंधरस्वामी तथा चतुर्विंशति भगवंत और चोगानके मध्यमें गगनचुंबी मानस्तंभ ५३ फुट उन्नत स्थित है, जिसमें ऊपर-नीचे चतुर्मुख श्री सीमंधरस्वामी बिराजमान हैं। उसकी नीचे ३ वेदियाँ अद्भुत दृश्योंसे अंकित सुशोभित हैं। श्री वीतरागी भगवंतोंका दर्शन करते हुए मुमुक्षुओंको आश्चर्य होता है। वैराग्य-प्रेरक चित्रालयमें चित्रों भी अद्भुत हैं।

पर्वाधिराज पर्युषणमें अनेक मुमुक्षुगण अपनी निज हितकी साधना हेतु देवलालीमें अधिक संख्यामें आते हैं। हिन्दी, मराठी मुमुक्षु भाई अधिक संख्यामें लाभ लेते हैं। पर्युषण पर्वमें प्रत्येक प्रवृत्तिओंसे पूरा दिन आनंदमय आराधनापूर्वक व्यतीत हो जाता है। तथा शामको प्रतिदिन प्रतिक्रमण होता है। उसमें हिन्दी, मराठी मुमुक्षुओंको गुजराती प्रतिक्रमण पुस्तक तथा आलोचना-पाठ गुजराती भाषामें होनेसे समझमें

नहीं आता, अतः बहुतसे मुमुक्षुओंकी इच्छानुसार हिन्दी अक्षरोंमें छपानेका यह निर्णय किया गया है उसके हेतु आर्थिक सहयोग शीघ्र प्राप्त हुआ। अतः पुस्तक छपानेका शीघ्र निर्णय लिया गया।

इस पुस्तकमें प्रतिक्रमण, आलोचना पाठ, श्री आचार्य पद्मनंदि-विरचित तथा श्री अमितगति आचार्यदेव कृत सामायिक पाठ हिन्दी अक्षरोंमें लिया गया है।

देवलालीमें श्री जैन मुमुक्षु महिला मंडलकी दिनप्रतिदिन धार्मिक प्रवृत्तिओंमें वृद्धिगत हो रही है और मुमुक्षु महिलाओंने उत्साहपूर्वक जिनवाणीकी प्रवृत्तिको सचेत किया है। जिनवाणीका प्रकाशन प्रत्येक पर्युषणमें होता है। इस वर्ष श्री प्रतिक्रमण आलोचना-पाठका हिन्दी पुस्तक प्रकाशन करते हुए आनंदका अनुभव करते हैं।

इस अनादि मिथ्यात्व परिणामका प्रायश्चित्त, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, आलोचना करके स्व-स्वरूपमें स्थिर हो—यही भावना है।

श्री जैन मुमुक्षु महिला मंडल—देवलाली
अंतर्गत
पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली

।। श्री जिनाय नमः ।।

★ श्री गौतम स्वामी विरचित ★

दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण

श्लोक— जीवे प्रमादजनिताः प्रचुरा प्रदोषाः,
यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।
तस्मात्तदर्थममलं, मुनिबोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्रभवकर्म विशोधनार्थम् ।।१।।

अर्थः—प्रतिक्रमण की आवश्यकता को बतलाते हुए, मुनियों के लिए भी उसके स्पष्टीकरण की प्रतिज्ञा करते हुए, पूज्य आचार्य कहते है कि जीव में प्रमाद से जनित अनेक दोष पाये जाते है। वे प्रतिक्रमण करने से प्रलय (नाश) को प्राप्त होते है, इसलिए नाना भवों में संचित हुए कर्मरूप दोषों की विशुद्धि के निमित्त मुनियों के समझने के लिए प्रतिक्रमण का निर्मल अर्थ करता हूं।।१।।

आशा है मुनिगण इसे अवश्य ध्यान से पढ़ेंगे तथा इस आवश्यक क्रिया का नियमित रूप से पालन करेंगे।

श्लोक— पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया, मायाविना लोभिना,
रागद्वेष मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवतः, श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं, वर्वर्तिषुः सत्पथे ।।२।।

अर्थः—हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव! अत्यन्त पापी, दुरात्मा, जड़बुद्धि, मायावी, लोभी और राग द्वेष से मलीन मेरे मन ने जो दुष्कर्म उपार्जन किया है उसका निरन्तर सन्मार्ग में चलने

की इच्छा रखता हुआ आज मै आपके चरण कमलों में अपनी निन्दा पूर्वक त्याग करता हूं।।२।।

गाथा— खम्मामि सव्वजीवाणं; सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वैरं मज्झ ण केणवि ।।३।।

अर्थ :—मै सब जीवो से क्षमा याचना करता हूं, सब मुझे क्षमा प्रदान करें मेरा सब जीवों में मैत्रीभाव है, किसी के भी साथ मेरा बैर-भाव नहीं है।।३।।

गाथा— रागबंध पदोसंच, हरिसं दीणभाववं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं, रदिमरदिं-च वोरस्सरे।।४।।

अर्थ :—१. राग, २. द्वेष, ३. हर्ष, ४. दीनभाव, ५. उत्सुकता, ६. भय, ७. शोक, ८. रति (प्रीति) और ९. अरति (अप्रीति) इन सब आकुलता को उत्पन्न करने वाले भावों का, मै परित्याग करता हूं।।४।।

गाथा— हा दुट्ठ कयं, हा! दुट्ठ चिंतियं, भासियं च हा टुट्ठं।
अंतो अंतो डज्झमि, पच्छुत्तावेणं वेदंतो।।५।।

अर्थ :—हा! १. यदि मैने कार्य से कोई दुष्ट कार्य किया हो। हा! २. यदि मन से कोई दुष्ट चिन्तन किया हो, और हा! ३. यदि मैने मुख से कोई दुष्ट वचन बोला हो, उसको मै बुरा समझता हुआ, पश्चात्ताप पूर्वक मन ही मन में जल रहा हूं अर्थात् उन दुर्भावनाओं का त्याग करता हूं।।५।।

गाथा— दुव्वे खेत्ते काले; भावे च कदावराह सोहणयं णिंदण,
गरहण जुत्तो, मण, वच कायेण पडिक्कमणं।।६।।

अर्थ :—१. द्रव्य--आहार, शरीर आदि, २. क्षेत्र--वसतिका, शयन, मार्गादि, ३. काल--पूर्वाण्ह (प्रातःकाल) मध्यान्ह (दोपहर) अपराण्ह (सांयकाल) दिवस, रात्रि, पक्ष (१५ दिन) मास (३० दिन) चातुर्मास (४ महिने) संवत्सर (१ वर्ष) अतीत (भूतकाल) अनागत (भविष्यत् आने वाला काल) वर्तमान (मौजूद रहने वाला) ४. भाव--संकल्प और विकल्प खोटे चित्त व्यापार से किये गये अपराधों की निन्दा, तथा गर्हा से युक्त होकर शुद्ध मन, वचन और काय से शोधन करना प्रतिक्रमण है।। ६ ।।

विशेष—निंदा और गर्हा--यद्यपि दोनों शब्द एकार्थ सरीखे दिखते है फिर भी इनमें निम्नलिखित अंतर है-- (क) जो अपने आत्मा की साक्षीपूर्वक किये हुए पापों को बुरा समझना उसे निंदा कहते है, किन्तु जो (ख) गुरू आदि की साक्षी पूर्वक किये हुए पापों की निंदा करना सो गर्हा कहलाती है।

गद्य—एइंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणप्फदिकाइया, तसकाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।७।।

अर्थ :—१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पंचेन्द्रिय, ६. पृथ्वीकायिक, ७. अप्कायिक (जल कायिक) ८. तेजस्कायिक, (अग्निकायिक), ९. वायुकायिक, १०. वनस्पति-कायिक, और त्रसकायिक, इन सब इन्द्रिय और कायिक जीवों का १. उत्तापन, २. परितापन, ३. विराधन और ४. उपघात मैने स्वयं किया हो, औरों से कराया हो, और स्वयं करते हुए दूसरों की अनुमोदना की हो, वे सब पाप मेरे मिथ्या हों।

विशेष :—यद्यपि ये चारों ही शब्द प्रायः एकार्थ वाचन है फिर भी इनका भेद समझने के लिए नीचे विशेषार्थ दिया है। १. पृथ्वीकायिकादि जीवों का उत्तापन अर्थात् प्राणों का वियोग रूप मारण। २. परितापन पृथ्वीकायिकादि जीवों को संताप पहुंचाना, ३. विराधन--पृथ्वीकायिकादि जीवों को पीड़ा पहुंचाना और अनेक प्रकार से दुःखी करना, ४. उपघात--एक देश से अथवा संपूर्ण रूप से पृथ्वीकायिकादि जीवों को प्राणों से रहित करना ॥७॥

आलोचना

गद्य—इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो, परिविहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणन्ताणंता हरिया, वीआ, अंकुरा। छिण्णा भिण्णां एदेसिं उद्दावणं परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।

अर्थ :—हे भगवन् ! पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार का चारित्र है उसका मैने प्रमाद वश परिहापन (खंडन) किया हो, उसकी आलोचना-विशुद्धि करना चाहता हूं। उस तेरह प्रकार के चारित्र मे पहला महाव्रत प्राणों के व्यतिपात से रहित है। उसमें मैने असंख्यातासंख्यात पृथ्वीकायिक जीव, असंख्याता-संख्यात अप्कायिक जीव, असंख्यातासंख्यात तेजस्कायिक जीव, असंख्यातासंख्यात वायुकायिक जीव, अनंतानंत वनस्पतिकायिक जीव तथा हरित (सचित्त) बीज, अंकुर, छेदे भेदे, उनका उत्तापन,

परितापन विराधन और उपघात किया है, कराया है और करने वाले की अनुमोदना की है, वह मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे ॥१॥

गद्य--बेइंदिया जीवा असंखेज्ञासंखेज्ञा, कुक्खि किमि संख खुल्लुय, वराऽय, अक्खरिट्ठय-गण्डवाल संबुक्क-सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमणूणिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं॥२॥

अर्थ:—स्पर्शन और रसना ये जिनके दो इन्द्रियां होती है ऐसे दो इन्द्रिय जीव असंख्याता- संख्यात प्रमाण है उनमें से कुक्षि, कृमि (लट) घावों में पेदा होने वाले जीवों का भी ग्रहण किया गया है तथा शंख क्षुल्लक (बाला) वराटक (कौड़ी) अक्ष, अरिष्टबाल (बाल जातिका ही जन्तु विशेष) संबूक (लघुशंख) सीप, पुलवीक (पानी की जोंक) आदि अन्य भी दो इन्द्रिय जीव बहुत से है उनका उत्तापन, परितापन, विराधना और उपघात मैने किया हो, कराया हो और करने वाले की अनुमोदना की हो, वह मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे ॥२॥

गद्य--तेइंदिया जीवा-असंखेज्ञासंखेज्ञा, कुन्थुदेहिय विंच्छिय गोभिंद-गोजुव-मक्कुण, पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमणूणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं॥३॥

अर्थ:—स्पर्शन, रसना, और घ्राण ये जिनके तीन इंद्रियाँ होती है ऐसे तीन इंद्रिय जीव असंख्यातासंख्यात संख्या प्रमाण है उनमें से कुन्थु (सूक्ष्म जंतु) देहिक (उद्देवल) गोभिंद, गोजों, मत्कुण (खटमल) पिपीलिका (कीड़ी) सावण की डोकरी आदि अन्य भी तीन इंद्रिय जीव बहुत से है उनका उत्तापन, परितापन, विराधना और उपघात मैने किया हो, कराया हो और करने वाले

की अनुमोदना की हो, वह मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥३॥

गद्य--चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय, मक्खि, पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमिच्छि-याइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणूणिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

अर्थ :—स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु ये चार इंद्रियां होती है ऐसे चार इंद्रिय जीव असंख्याता- संख्यात संख्या प्रमाण है उनमें से दश (डांस) मशक (मच्छर) मक्खि (मक्खी) पयंग (पतंगा) कीट (गोमय कीट, रक्तकीट, अर्ककीटादि) भ्रमर (भौरा) महुयर (मधुमक्खी) गोमक्षिका इत्यादि असंख्याता- संख्यात संख्या प्रमाण जो चौ इन्द्री जीव है इनका उत्तापन, परितापन विराधना और उपघात मैनें किया हो, कराया हो और करने वाले की अनुमोदना की हो, वह मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे ॥ ४ ॥

लघु सिद्धभक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्त सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

अर्थ :—तप से सिद्ध, नय से सिद्ध, संयम से सिद्ध, चरित्र से सिद्ध, ज्ञान से सिद्ध और दर्शन में सिद्ध हुए ऐसे सब सिद्धों को मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥२॥

गद्य--(अंचलिका)-इच्छामि भंते! सिद्धभक्त्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्प मुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तय-

सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहि मरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।।

अर्थ:—हे भगवन्! मैने सिद्ध भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूं। जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त है, आठ प्रकार के कर्मों से मुक्त है, आठ गुणों से सम्पन्न है, ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित है, तप सिद्ध है, नयसिद्ध है, संयमसिद्ध है, चारित्र सिद्ध है, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से सिद्ध है, अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों में सिद्ध है ऐसे सब सिद्धों की नित्यकाल अर्चा करता हूं पूजा करता हूं, वंदना करता हूं, नमस्कार करता हूं। मेरे दुःखो का क्षय हो, कर्मों का क्षय हों, बोधि रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधि मरण हो और जिनेन्द्र के गुणों की सम्यक् प्राप्ति हो।

कृति अनुयोग द्वारा (वाचना शुद्धि प्ररूपणा)

धवला पुस्तक-६

यमपटहरवश्रवणे रुधिरस्त्रावेंऽगतोऽतिचारे च।
दातृष्वशुद्धकायेषु भुक्तवति चापि नाध्येयम्।।६२।।

तिलपलल-पृथुक-लाजा-पूपादिस्निग्धसुरभिगधेषु।
भक्तेषु भोजनेषु च दावाग्निघूमे च नाध्ययम्।।६३।।

योजनमण्डलमात्रे सन्यासविधौ महोपवासे च।
आवश्यकक्रियायां केशेषु च लुच्यमानेषु।।६४।।

सप्तदिनान्यध्ययनं प्रतिषिद्धं स्वर्गगते श्रमणसूरौ।
योजनमात्रे दिवसत्रितयं त्वतिदूरतो दिवसम् ॥९५॥

प्राणिनि च तीव्रदुःखान्म्रियमाणे स्फुरति चातिवेदनया।
एकनिवर्तनमात्रे तिर्यक्षु चरत्सु च न पाठ्यम् ॥९६॥

तावन्मात्रे स्थावरकायक्षयकर्मणि प्रवृत्ते च।
क्षेत्राशुद्धौ दूराद् दुर्गंधे वातिकुणपे वा ॥९७॥

विगतार्थागमने वा स्वशरीरे शुद्धिवृत्तिविरहे वा।
नाध्येयः सिद्धान्तः शिवसुखफलमिच्छता व्रतिना ॥९८॥

प्रमितिररत्निशतं स्यादुच्चारविमोक्षणक्षितेरारात्।
तनुसलिलमोक्षणेऽपि च पंचाशदरत्निरेवातः ॥९९॥

मानुषशरीरलेशावयस्याप्यत्र दण्डपंचाशत्।
संशोध्या तिरश्चां तदर्द्धमात्रैव भूमिः स्यात् ॥१००॥

व्यन्तरभेरीताडन-तत्पूजासंकटे कर्षणे वा।
संमृक्षण-समार्ज्ञनसमीपचाण्डालबालेषु ॥१०१॥

अग्निजलरुधिरदीपे मांसास्थिप्रजनने तु जीवानां।
क्षेत्रविशुद्धिर्न स्याद्यथोदितं सर्वभावज्ञैः ॥१०२॥

क्षेत्रं संशोध्य पुनः स्वहस्तपदौ विशोध्य शुद्धमनाः।
प्राशुकदेशावस्थो गृण्हीयाद् वाचनां पश्चात् ॥१०३॥

युक्त्या समधीयानो वक्षणकक्षाद्यमस्पृशन् स्वाङ्गम्।
यत्नेनाधीत्य पुनर्यथाश्रुतं वाचनां मुंचेत् ॥१०४॥

तपसि द्वादशसंख्ये स्वाध्यायः श्रेष्ठ उच्यते सद्भिः।
अस्वाध्यायदिनानि ज्ञेयानि ततोऽत्र विद्वद्भिः ॥१०५॥

पर्वसु नन्दीश्वरवरमहिमा दिवसेषु चोपरागेषु।
सूर्याचन्द्रमसोरपि नाध्येयं जानता व्रतिना ।।१०६।।

अष्टम्यामध्ययनं गुरु-शिष्यद्वय वियोगमावहति।
कलहं तु पौर्णमास्यां करोति विघ्न चतुर्दश्याम् ।।१०७।।

कृष्णचतुर्दश्यां यद्यधीयते साधवो ह्यमावस्यायाम्।
विद्योपवासविधयो विनाशवृत्तिं प्रयान्त्यशेष सर्वे ।।१०८।।

मध्यान्हे जिनरूपं नाशयति करोति संध्ययोर्व्याधिम्।
तुष्यन्तोऽप्यप्रियतां मध्यमरात्रौ समुपयान्ति ।।१०९।।

अतितीव्रदुःखितानां रुदतां संदर्शने समीपे च।
स्तनयित्नुविद्युदभ्रेष्वतिवृष्ट्या उल्कनिर्घाते ।।११०।।

प्रतिपद्येकः पादो ज्येष्ठामूलस्य पौर्णमास्यां तुं।
सा वाचनाविमोक्षे छाया पूर्वाण्हवेलायाम् ।।१११।।

सैवापराण्हकाले वेला स्याद्वाचनाविद्यौ विहिता।
सप्तपदी पूर्वाण्हापराण्हयोर्ग्रहण-मोक्षेषु ।।११२।।

ज्येष्ठामूलात्परतोऽप्यापौषाद्व्यंगुला हि वृद्धिः स्यात्।
मासे मासे विहिता क्रमेण सा वाचनाछाया ।।११३।।

एवं क्रमप्रवृद्धया पादद्वयमत्र हीयते पश्चात्।
पौषादाज्येष्ठान्ताद् द्वयंगुलमेवेति विज्ञेयम् ।।११४।।

दव्वादिवदिक्कमणं करेदि सुत्तत्थसिक्खलोहेण।
असमाहिमसज्झायं कलहं वाहिं वियोगं च१ ।।११५।।

विणएण सुदमधीदं किह वि पमादेण होइ विस्सरिदं।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आवहदि२ ।।११६।।

इदि वयणादो तित्थयरवयणविणिग्गयबीजपदं सुत्तं। तेण सुत्तेण समं वट्टदि उप्पज्जदि त्ति गणहरदेवम्मि ट्ठिदसुदणाणं सुत्तसमं। अर्यते परिच्छिद्यते गम्यते इत्यर्थो द्वादशांगविषयः, तेण अत्थेण समं सह वट्टदि त्ति अत्थसमं। दव्वसुदाइरिए अणवेक्खिय संजमजणिदसुद-णाणावरणक्खओवसमसमुप्पण्ण-बारहंसुगदं सयंबुद्धाधारमत्थसममिदि।

यमपटहका शब्द सुननेपर, अंगसे रक्तस्त्रावके होनेपर, अतिचारके होनेपर, तथा दाताओंके अशुद्धकाय होते हुए भोजन कर लेनेपर स्वाध्याय नहीं करना चाहिये ॥६२॥

तिलमोदक, चिउडा, लाई और पुआ आदि चिक्कण एवं सुगन्धित भोजनोंके खानेपर तथा दावानलका धुआं होनेपर अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥६३॥

एक योजनके घेरेमें सन्यासविधि, महोपवासविधि, आवश्यकक्रिया एवं केशोंका लोंच होनेपर तथा आचार्योंका स्वर्गवास होनेपर सात दिन तक अध्ययनका प्रतिषेध है। उक्त घटनाओंके योजन मात्रमें होनेपर तीन दिन तक तथा अत्यन्त दूर होनेपर एक दिन तक अध्ययन निषिद्ध है ॥६४–६५॥

प्राणीके तीव्र दुःखसे मरणासन्न होनेपर या अत्यन्त वेदनासे तडफडानेपर तथा एक निवर्तन (एक वीधा या गुंठा) मात्रमें तिर्यंचोंका संचार होनेपर अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥६६॥

उतने मात्रमें स्थावरकाय जीवोंके घात रूप कार्यमें प्रवृत्त होनेपर, क्षेत्रकी अशुद्धि होनेपर, दूरसे दुर्गन्ध आनेंपर अथवा अत्यन्त सडी गन्धके आनेपर, ठीक अर्थ समझमें न आने पर अथवा अपने शरीरके शुद्धिसे रहित होनेपर मोक्षसुखके चाहनेवाले व्रती पुरुषको सिद्धान्तका अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥६७–६८॥

मल छोडनेकी भूमिसे सौ अरत्नि प्रमाण दूर, तनुसलिल अर्थात् मूत्रके छोबनेमें भी इस भूमिसे पचास अरत्नि दूर, मनुष्यशरीरके लेशमात्र अवयवके स्थानसे पचास धनुष, तथा तिर्यंचोंके शरीरसम्बन्धी अवयवके स्थानसे उससे आधी मात्र अर्थात् पच्चीस धनुष प्रमाण भूमिको शुद्ध करना चाहिये ॥९९–१००॥

व्यन्तरोंके द्वारा भेरीताडन करनेपर, उनकी पूजाका संकट होनेपर, कर्षणके होनेपर, चाण्डालबालकोंके समीपमें झाडा-बुहारी करनेपर; अग्नि, जल व रुधिरकी तीव्रता होनेपर; तथा जीवोंके मांस व हड्डियोंके निकाले जानेपर क्षेत्रकी विशुद्धि नहीं होतीं जैसा कि सर्वज्ञोंने कहा है ॥१०१–१०२॥

क्षेत्रकी शुद्धि करनेके पश्चात् अपने हाथ और पैरोंको शुद्ध करने तदनन्तर विशुद्ध मन युक्त होता हुआ प्राशुक देशमें स्थित होकर वाचनाको ग्रहण करे ॥१०३॥

बाजू और कांख आदि अपने अंगका स्पर्श न करता हुआ उचित रीतिसे अध्ययन करे और यत्नपूर्वक अध्ययन करके पश्चात् शास्त्रविधिसे वाचनाको छोड दे ॥१०४॥

साधु पुरुषोंने बारह प्रकारके तपमें स्वाध्यायको श्रेष्ठ कहा है। इसीलिये विद्वानोंको स्वाध्याय न करनेके दिनोंको जानना चाहिये ॥१०५॥

पर्वदिनों (अष्टमी व चतुर्दशी आदि), नन्दीश्वरके श्रेष्ठ महिमा-दिवसों अर्थात् अष्टान्हिक दिनोंमें और सूर्य-चन्द्रका ग्रहण होनेपर विद्वान व्रतीको अध्ययन नहीं करना चाहिये ॥१०६॥

अष्टमीमें अध्ययन गुरु और शिष्य दोनोंके वियोगको करता है। पूर्णमासीके दिन किया गया अध्ययन कलह और कृष्ण चतुर्दशी और

अमावस्याके दिन किया गया अध्ययन विध्नको करता है॥१०७॥

यदि साधु जन कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्याके दिन अध्ययन करते हैं तो विद्या और उपवासविधि सब विनाशवृत्तिको प्राप्त होते हैं॥१०८॥

मध्यान्ह कालमें किया गया अध्ययन जिनरूपको नष्ट करता है, दोनों संध्याकालोमें किया गया अध्ययन ब्याधिको करता है, तथा मध्यम रात्रिमें किये गये अध्ययनसे अनुरक्त जन भी द्वेषको प्राप्त होते हैं॥१०९॥

अतिशय तीव्र दुखसे युक्त और रोते हुए प्राणियोंको देखने या समीपमें होनेंपर मेधोंकी गर्जना व बिजलीके चमकनेपर और अतिवृष्टिके साथ उल्कापात होनेपर (अध्ययन नहीं करना चाहिये)॥११०॥

जेठ मासकी प्रतिपदा एवं पूर्णमासीको पूर्वाण्ह कालमें वाचनाकी समाप्तिमें एक पाद अर्थात् एक वितस्ति प्रमाण (जांघोंकी) वह छाया कही गई हैं। अर्थात् इस समय पूर्वाण्ह कालमें बारह अंगुल प्रमाण छायाके रह जानेपर अध्ययन समाप्त कर देना चाहिये॥१११॥

वही समय (एक पाद) अपराण्हकालमें वाचनाकी विधिमें अर्थात् प्रारम्भ करनेमें कहा गया है। पूर्वाण्हकालमें वाचनाका प्रारम्भ करने और अपराण्हकालमें उसके छोडनेमें सात पाद (वितस्ति) प्रमाण छाया कही गई है (अर्थात् प्रातः काल जब सात पाद छाया हो जावे तब अध्ययन प्रारम्भ करे और अपराण्हमें सात पाद छाया रहजानेपर समाप्त करे)॥११२॥

ज्येष्ठ मासके आगे पौष मास तक प्रत्येक मासमें दो अंगुल

प्रमाण वृद्धि होती है। यह क्रमसे वाचना समाप्त करनेकी छायाका प्रमाण कहा गया है॥११३॥

इस प्रकार क्रमसे वृद्धि होनेपर पौष मास तक दो पाद हो जाते हैं। पश्चात् पौष माससे ज्येष्ठ मास तक दो अंगुल ही क्रमशः कम होते जाते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥११४॥

सूत्र और अर्थकी शिक्षाके लोभसे किया गया द्रव्यादिकका अतिक्रमण असमाधि अर्थात् सम्यकत्वादिकी विराधना, अस्वाध्याय अर्थात् शास्त्रादिकोंका अलाभ, कलह, व्याधि और वियोगको करता है॥११५॥

विनयसे पढा गया श्रुत यदि किसी प्रकार भी प्रमादसे विस्मृत हो जाता है तो परभवमें वह उपस्थित हो जाता है और केवलज्ञानको भी प्राप्त कराता है॥११६॥

❀

"सामायिक" का स्वरूप, लाभ एवं उसके भेद

सम्-राग-द्वेष रहित, आय-उपयोग की प्रवृति। राग-द्वेष की परिणति का अभाव करके साम्यभावरूप परिणति को प्राप्त करना 'सामायिक' है। सम्-राग-द्वेष की निवृति, आय-प्रशमादिरूप ज्ञान का लाभ। राग-द्वेष में माध्यस्थ भाव रखना 'सामायिक' है। मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम ही 'सामायिक' है। सम्यकत्व, ज्ञान, संयम और तप इन चार प्रकार की अवस्था को 'सामायिक' कहते हैं। अपने स्वरूप की साधना में भूल न हो जाय उसके लिए शरीर की शुद्धि के साथ शुद्ध कपड़े पहिन कर एकान्त में स्थिरता पूर्वक अपने शुद्ध स्वरूप का विचार करना ही 'सामायिक' है।

'सामायिक' क्यों करना चाहिये :—

आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान रूप संसार प्रवृत्ति की निवृत्ति और धर्मध्यान रूप प्रवृत्ति में सर्व जीवों के प्रति वैर विरोध को त्यागकर संयम तप और त्याग भावना के भावरूप उदासीनता को प्राप्त कर समताभाव की सिद्धि के लिए सामायिक करने में आवे तो वह वीतरागता की प्राप्ति का कारण है।

'सामायिक' आत्म कल्याण के हेतु करने में आती है। जितने-जितने अंशो में विषय कषाय घट जावे और परिणामों में वीतरागता व शान्ति बढ़ती जावे, उतने-उतने अंशो में धर्मस्थान की प्राप्ति के लिए मुमुक्षुओं का समायिकादि षट् आवश्यक करना परम कर्तव्य है।

'सामायिक' करने से लाभ :—

'सामायिक' करने वाले मुमुक्षु के सब प्रकार के पापास्त्रव

रुककर सातिशय पुण्य का बन्ध होता है। भावपूर्वक सामायिक करने से सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। आत्मतत्त्व की प्राप्ति का मूल कारण 'सामायिक' ही है। एकाग्रतारूप साम्यता से ही जीव को निष्कर्मरूप अवस्था प्राप्त होती है।

अभव्य जीव को भी 'द्रव्य-सामायिक' के प्रभाव से नौवे ग्रैवेयक के अहमिंद्र पद की प्राप्ति हो जाती है, तो फिर 'भाव-सामायिक' से केवलज्ञान क्यों नही प्राप्त होगा? अवश्य होगा।

'सामायिक' करने से पंचेन्द्रिय-विषय एवं अंतरंग कषाय का नाश होता है और पदार्थ के प्रति ममता छूट जाती है। छह काय के जीवों के प्रति समता प्रकट होती है।

'सामायिक' का प्रारम्भिक अभ्यासी श्रावक शुभोपयोग से सातिशय पुण्य बाँध कर अभ्युदय युक्त सर्व सुख भोग कर मनुष्य भव की प्राप्ति करता है; और फिर निर्ग्रन्थ-मुनि होकर शुद्धोपयोग को प्राप्त करके संवर पूर्वक समस्त कर्मों की निर्जरा करते हुए मोक्षपद की प्राप्ति कर लेता है।

'सामायिक करने का स्थान :—

जिस स्थान में, चित्त में विक्षेप करने के कारण न हों, जहाँ अनेक लोगों के वाद-विवादिक का कोलाहल न हो, अधिक असंयमी जीवों का आवागमन न हो, स्त्रियों का, नपुंसकों का, विशेष आना जाना न हो, गीत, नृत्य वाद्य यंत्रों आदि का प्रचार समीप में न हो, तिर्यन्चों एवं पक्षियों का संचार न हो, जहाँ बहुत शीत तथा उष्णता की, प्रचण्ड पवन की, वर्षा की बाधा न हो, डाँस, मच्छर, मक्खी, सर्प, बिच्छु इत्यादिक जीवों के द्वारा कोई बाधा न हो, ऐसे विक्षेप रहित एकान्त स्थान हो, वन हो या जीर्ण बाग का मकान

हो, गृह हो, चैत्यालय हो या धर्मात्मा पुरुषों का प्रोषद्योपवास करने का स्थान हो, ऐसे एकान्त विक्षेप रहित स्थान में प्रसन्नचित होकर, समस्त मन के विकल्पों को छोड़कर 'सामायिक' करनी चाहिये।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक ९९ के आधार से)

'सामायिक' प्रारम्भ करने की विधि :—

"सामायिक" प्रारम्भ करने से पहिले अपनी इन्द्रियों के विषय-व्यापार से विरक्त होकर अपने केश-वस्त्रादि को यथाविधि बाँध लेना चाहिए, जिससे के सामायिक करते समय क्षोभ न हो। सामायिक के काल में खान, पान, व्यापार, रोजगार, लेन-देन विकथा, आरम्भ, समारंभ विसंवादादि समस्त पाप क्रियाओं को मन-वचन-काय-कृत-कारित अनुमोदना से त्याग कर एवं मर्यादा के बाहर क्षेत्र में नियत समय तक हिंसादि पांच पापों को सर्वथा त्याग कर राग-द्वेष रहित सकल जीवों पर समता भाव धारण कर; आर्त्त, रौद्र ध्यान छोड़कर एक चिदानन्द स्वरूप शुद्धात्मा का ध्यान करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

"अहं समस्त सावद्ययोगाद्विरतोस्मि"

"मैं समस्त सावद्ययोग का त्याग करता हूँ।" ऐसे कहकर पूर्व या उत्तर दिशा में मुंह करके दोनों हाथों को सीधा लट्का कर दोनों पावों के बीच में चार अंगुल की जगह रखकर नासादृष्टि लगाकर कायोत्सर्ग पूर्वक आसन पर खड़ा होकर अरहन्त सिद्ध भगवान की साक्षी से दो घड़ी ४८ मिनिट तक "सामायिक" करने की आज्ञा लेकर प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

मेरी सामायिक काल की मर्यादा पूर्ण न हो जाय, तब तक मैं दूसरे स्थान का एवं परिग्रह का त्याग करता हूँ, पुनश्च अपनी

देह पर रहे हुए परिग्रह एवं शरीर के प्रति ममता का त्याग करने के अभ्यास पूर्वक नौ बार 'णमोकार मन्त्र' का जाप्य मन में बोलकर, ३ आवर्त्त ए एक शिरोनति करनी चाहिये। इसी प्रकार चारों दिशाओं में से प्रत्येक में नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य, ३ आवर्त्त व एक शिरोनति करनी चाहिये। (दोनों हाथ जोड़कर बाई ओर से दाहिनी ओर ले जाते हुए घुमाना आवर्त्त है और मस्तक झुकाना शिरोनति है) प्रत्येक दिशा में पंच परमेष्ठी हैं, उस दिशा में विद्यमान तीन लोक के कृत्रिम-अकृत्रिम जिन चैत्यालयों को नमस्कार करें। बाद में जिस दिशा से आज्ञा ली है, उस दिशा में अष्टांग नमस्कार करके तीन बार नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, बोलकर आसन लगाना चाहिए और फिर सामायिक पूर्ण होने तक उस आसन को नही बदलना चाहिए। किसी प्रकार की विघ्न-बाधा आने पर भी अपने आसन को नहीं छोड़ना चाहिए।

आसन लगाने की विधि :—

(१) **खड़गासन**–अपने दोनों पैरों को चार अंगुल के फासले से रखकर दोनों हाथ को सीधा लटका कर सीधा खड़ा होने को ''खड़गासन'' कहते हैं।

(२) **पद्मासन**–दाहिनी जांघ पर बांये पैर, बाँई जांघ पर दाहिने पैर को रखकर गोद में बायें हाथ की हथेली को नीचे रखकर दाहिने हाथ की हथेली को ऊपर रख कर सीधा बैठने को ''पद्मासन'' कहते हैं।

(३) **अर्द्धपद्मासन**–बायें पैर की जांघ के ऊपर दाहिना पैर रखकर पद्मासन की भाँति हाथों की हथेलियों को रखकर सीधा बैठने को ''अर्द्धपद्मासन'' कहते हैं।

''सामायिक'' करते समय पूर्व दिशा में इन आसनों में से कोई

एक आसन लगाकर आँखों को आधी खुली रखकर सौम्य नासादृष्टि से उपयोग को (तत्वों के ज्ञेयों की) तत्वदृष्टि (षट् द्रव्य व उनकी गुणपर्यायों) पर लगाना चाहिये। (सामायिक काल में मौन पूर्वक शान्त चित्त से प्रमाद छोड़कर उत्साह पूर्वक "सामायिक" करना चाहिये। मनोवृत्ति की शुद्धि से चित्त शान्त होता है और उपयोग निश्चल दशा को प्राप्त होता है। शुद्धात्म स्वरूप में उपयोग की स्थिरता करना ही यथार्थ 'सामायिक' है।)

यदि सामायिक पाठ याद न हो तो इस पुस्तक में जिस क्रम से सामायिक के पाठ छपे हैं, उसके अनुसार शुद्ध उच्चारण करें। साथ में अपने दूसरे साथी हों तो उनके स्वर में स्वर मिलाकर पाठ करें, पाठ का भाव बराबर समझते रहना चाहिये।

सामायिक में णमोकार मंत्र, अ सि आ उ सा नमः अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो नमः, अरिहंत सिद्ध, ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, मंत्र का १०८ बार जाप करें। जाप पूरे होने पर पूर्वोक्त लिखे अनुसार पुनः चारों दिशाओं में णमोकार मंत्र पूर्वक नमस्कार करें।

(सूत की जापमाला में १०८ दाने होते हैं। उनका रहस्य यह है कि गृहस्थ समरम्भ, समारम्भ, आरंभ ये तीन मन-वचन और काय से स्वयं करते हैं, कराते हैं जो क्रोध, मान, माया, लोभ के वश में होकर करते हैं, इसलिए इनके परस्पर गुणने से १०८ कर्मास्रव के भंग होते हैं। कोई भी पापकार्य उक्त प्रकार से होता रहता है जिससे अशुभ-कर्म बंधता हैं इसके रोकने का उपाय 'सामायिक' है।)

'सामायिक' पूर्ण करने की विधि :—

सामायिक काल में मन, वचन, काय की प्रवृत्ति में ३२ दोषों

में से कोई भी दोष जाने- अनजाने प्रमादवश हो गया हो तो अरहन्त भगवान से क्षमा माँगनी चाहिए।

सामायिक पाठ बोलने में मात्रा, बिन्दी, पद, अक्षर, गाथा सूत्र आदि का हीनाधिक, विपरीत, अशुद्ध-उच्चारण किया हो या और कोई दोष लग गया हो तो उनकी भगवान से क्षमा माँगनी चाहिये।

सामायिक काल में मन, वचन, काय से आत्मभावना में न ठहर कर उपयोग को अशुभ भावों में (मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग) असावधानी से लगाया हो या और किसी प्रकार का पाप दोष लगा हो तो भगवान से क्षमा माँगनी चाहिए।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, जान से, अनजान से किसी प्रकार का पाप दोष प्रमादजन्य हो गया हो तो भगवान से क्षमा माँगनी चाहिए।

इस तरह क्रिया करने के बाद ६ बार 'णमोकार मन्त्र' का जाप्य करके "सामायिक" पूर्ण करनी चाहिए।

'सामायिक' के छः भेद :–

१. **नाम-सामायिक**–शुभ-अशुभ नाम को सुनकर राग-द्वेष नहीं करना, सो 'नाम-सामायिक' है।

२. **स्थापना-सामायिक**–कोई स्थापना प्रमाणादिक से सुन्दर है और प्रमाणादि से हीनाधिक होने से असुन्दर है। उनके प्रति राग-द्वेष का अभाव, सो 'स्थापना-सामायिक' है।

३. **द्रव्य-सामायिक**–सुवर्ण, चाँदी, रत्न, मोती इत्यादि एवं मिट्टी, काष्ठ, पाषाण, कण्टक, राख, भस्म, धूलि इत्यादिक में राग-द्वेष रहित सम देखना, सो 'द्रव्य-सामायिक' है।

४. **क्षेत्र-सामायिक**–महल, उपवनादिक रमणीक, शमशानादिक अरण्यक क्षेत्र में राग-द्वेष छोड़ना सो 'क्षेत्र-सामायिक' है।

५. **काल-सामायिक**–हिम, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद ऋतु में और रात्रि, दिवस व शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष इत्यादिक काल में राग-द्वेष का वर्जन, सो काल-सामायिक है।

६. **भाव-सामायिक**–समस्त जीवों के दुःख न हो ऐसे मैत्रीभाव से तथा शुभ-अशुभ परिणामों के अभाव को 'भाव-सामायिक' कहते हैं।

वैर-त्याग चिन्तन :–

"सामायिक" करने वाला समस्त जीवों में मैत्री धारण करता हुआ परम क्षमा को धारण करता है। कोई जीव मेरा वैरी नहीं है, अज्ञानवश उपार्जन किया मेरा कर्म ही वैरी है। मैंने स्वयं अज्ञान भाव से क्रोधी, मानी, लोभी होकर विपरीत परिणाम किये। जिस वस्तु-व्यक्ति से मेरा अभिमान पुष्ट नहीं हुआ उसको वैरी माना, किसी ने मेरी प्रशंसा-स्तुति नहीं की, उसी को वैरी समझा। मेरा आदर-सत्कार नहीं किया व उच्च-स्थान नहीं दिया उसको वैरी समझा। किसी ने मेरे दोषों को प्रगट किया उसको वैरी जाना-सो यह सब मेरी कषाय से, दुर्बुद्धि से अन्य जीवों में वैर-बुद्धि उपजी है, इसको छोड़कर क्षमा अंगीकार करता हूँ और अन्य समस्त जीव मेरा अज्ञान भाव जानकर मुझे क्षमा करें।

आत्म चिन्तन

समस्त दिन में प्रमाद के वश होकर तथा कषायों के वशीभूत होकर अथवा विषयों में रागी-द्वेषी होकर किन्हीं

एकेन्द्रियादिक जीवों का घात किया तथा अनर्थक प्रवर्तन किया व सदोष भोजन किया अथवा किसी जीव के प्राणों को पीड़ा पहुँचाई तथा कर्कश-कठोर मिथ्या वचन कहे अथवा किसी की विकथा की अथवा अपनी प्रशंसा करी अथवा अदत्त धन ग्रहण किया अथवा पर के धन में लालसा करी तथा पर की स्त्री में राग किया तथा धन परिग्रह आदि में लालसा करी, ये समस्त पाप खोटे किए - अब ऐसे पापरूप परिणाम से भगवान पंच परमगुरु, हमारी रक्षा करें। ये सब परिणाम मिथ्या हों। पंच परमेष्ठी के प्रसाद से हमारे पापरूप परिणाम न हों। ऐसे भावों की शुद्धता के लिए कायोत्सर्ग करके पंच नमस्कार पूर्वक नौ बार जाप करें।

'सामायिक' करने की विधि

शरीर से शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर किसी मन्दिर आदि एकान्त स्थान में 'सामायिक' करना चाहिये। प्रत्येक दिशा में तीन आवर्त व एक शिरोनति करके नमस्कार पूर्वक अपने आसन पर बैठना चाहिये व सामायिक की प्रत्येक क्रिया को मनन पूर्वक करना चाहिये। मन को पवित्र रखना चाहिये, जब तक सामायिक पूर्ण न हो अपने आसन को नहीं छोड़ना चाहिये। छोटे बालकों को अपने पास नहीं बैठाना चाहिये।

'सामायिक' के बाद एक वहत् कायोत्सर्ग करना चाहिये जिसमें कम से कम २७ बार या १०८ बार णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिये। सामायिक के समय दृष्टि व मन पर कड़ा नियन्त्रण रखना चाहिये। अन्त में पूर्ववत् ही दिशा वंदन करना चाहिये।

'सामायिक' पाठ प्रारंभ

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।
चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।
चत्तारि सरणं पव्वज्ञामि, अरहंते सरणं पव्वज्ञामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्ञामि, साहू सरणं पव्वज्ञामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्ञामि।

ॐ ह्रीं सर्व शान्ति कुरू कुरू स्वाहा।।

भावार्थ–अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधुओं को नमस्कार हो। संसार में अरहंत, सिद्ध साधु, केवलिप्रणीत, धर्म ये ही चार मंगल रूप हैं। ये ही चार उत्तम हैं, ये ही चार परम शरण हैं। ये सर्व प्रकार शांति करें।

(ईर्यापथ शुद्धि पाठ)

श्लोक – इर्या पथे प्रचलिताद्य मया प्रमादा,
देकेन्द्रिय प्रमुख जीवनिकाय बाधा।
निर्वर्तिता यदि भवेद युगान्तरेवा,
मिथ्यातदस्तु दुरितं गुरु भक्ति तो मे।।

भावार्थ–हे भगवन् ! मार्ग में चलते हुए मुझसे प्रमाद वश बिना देखे एकेंद्रियादिक जीव की हिंसा हुई हो तो, वह आपकी भक्ति से मिथ्या होवे।

(ईर्यापथ प्रतिक्रमण)

पडिक्कामामि भंते ईरियावहियाये विराणाये अणुगुत्ते अइग्गमणे णिग्गणे ठाणेगमणे चक्कमणे पाणुगमणे बीजुगमणे हरिदुग्गमणे उच्चार पस्सबण खेल सिंधाणय वियडी पयिट्ठवणाये जे जीवा एइन्दिया वा बेइन्दिया वा तेइंदिया वा चउरिंदिया वा पंचेंदिया वा णोल्लिदा वा पिल्लिदा वा संघादिदा वा ओद्दाविदा वा परिदाविदा वा किरिंछिदा वा लोस्सिदा वा छिंदिदा वा भिन्दिदा वा ठाणदो वा ठाण-चक्कमणदो वा तस्स उत्तर गुणं तस्स पायछित्तिकरणं तस्स विसोही करणं जावरहंताण भयवँताणं णमोकार करोमि।

भावार्थ—हे भगवन्! मेरे चलन में जीवों की हिंसा हुई हो तो उसके लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

यथा मन--वच--काय को वश में न रखने, बहुत चलने, इधर उधर फिरने तथा द्विइंद्रियादि प्राणियों पर पैर रखकर चलने में मल, मूत्र, थूक, नाक--मल मिट्टी वगैरह डालने से एकेंद्रियादि पंचेन्द्रिय प्राणी अपने स्थान पर जाने से रोके गये हों, दूसरी जगह डाले गये हों, संघर्षित किये, कराये हों, दूसरे पर डाले गये हों, तपाये गये हों, काटे गये हों, मूर्छित किये गये हों, छेदे गये हों, और अपने स्थान से जाते हुये पृथक--पृथक किये गये हों, तो मैं उसका प्रायश्चित करता हूँ, दोषों की शुद्धि के लिये भगवान अरहंत को नमस्कार करता हूँ।

तावकायं पावकम्म दुच्चरियं बोस्सरामि।
कायोत्सर्गं करोम्यहं॥
(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करना चाहिये)

*

(ईर्यापथ आलोचना)

इच्छामि भंते ईरिया वह मालोचेउ पुव्वुत्तर दक्खिण पच्छिम चउ दिसासु विदिसासु विहरमाणेण जुगुत्तर दिटिठणा दट्ठब्बा डव डव चरियाये पमाददोसेण पाणभूद जीव सत्ताणं एदेसिं उवघादो कदो वा कारिदो वा किरिंतो वा समणुमणिदो वा तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

भावार्थ—हे भगवन्! मैं इर्यापथ की आलोचना करता हूँ। पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम चारों दिशा और ईशानादि विदिशाओं में इधर उधर फिरने और ऊपर की ओर दृष्टि कर चलने में मैंने प्रमादवश द्विन्द्रियादिक प्राणियों का घात किया हो कराया हो वा अनुमति दी हो वे पाप मिथ्या होवें।

(दिग्वंदना)

(तीन आवर्त व एकशिरोनति प्रति दिशा में करना चाहिये।)

(पूर्व की ओर मुख करके पढ़े)

प्राग्दिग्विंगन्तरतः केवलि जिन सिद्ध साधु गणदेवाःये सर्वर्द्धिसमृद्धाःयोगीशास्तानहं वंदे।

भावार्थ—पूर्व दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलि,

कृत्रिमाकृत्रिम, जिन चैत्य, चैत्यालय जहां--जहां हों उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

(दक्षिण की ओर मुख करके पढ़े)

दक्षिण दिग्विदिगन्तरतः केवलि जिन सिद्ध साधु गणदेवाःये सर्वर्द्धि समृद्धा योगीशास्तानहं वंदे।

भावार्थ—दक्षिण दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलि, कृत्रिमाकृत्रिम, जिन चैत्य, चैत्यालय जहां जहां हों उनको मेरा मन से, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

(पश्चिम की ओर मुख करके पढ़े)

पश्चिम दिग्विदिगन्तरतः केवलि जिन सिद्ध साधु गणदेवाःये सर्वर्द्धि समृद्धा योगीशास्तानहं वंदे।

भावार्थ—पश्चिम दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलि, कृत्रिमाकृत्रिम, जिन चैत्य, चैत्यालय जहां जहां हो उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

(उत्तर की ओर मुख करके पढ़े)

उत्तर दिग्विदिगन्तरतः केवलि जिन सिद्ध साधुगण देवाःये सर्वर्द्धि समृद्धा योगीशास्तानहं वंदे।

भावार्थ—उत्तर दिशा विदिशा में अरहंत, सिद्ध, साधु, केवलि, कृत्रिमाकृत्रिम, जिन चैत्य, चैत्यालय जहां जहां हों उनको मेरा मन से, वचन से, काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

(पश्चात् दण्डवत् प्रणाम करके अपने आसन पर स्थिर चित्त से बैठ जाना चाहिये।)

(सामायिक करने की प्रतिज्ञा)

भगवन् नमोऽस्तुते एषोऽहमथ अपरान्हिक
देव बंदना करिष्यामि (सामायिक स्वीकारः)

भावार्थ—हे भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करता हुआ संध्या काल की देव वंदना में सामायिक स्वीकार करता हूँ। अर्थात् सामायिक काल पर्यन्त किसी प्रकार का आरंभ नहीं करूंगा और न इस स्थान को छोड़कर स्थानान्तर गमन करूंगा तथा जो मेरे शरीर पर परिग्रह है उससे निर्ममत्व होता हुआ अन्य सब परिग्रहों को छोड़ता हूँ।

(यहां समय की मर्यादा कर लेना चाहिये)

(सामायिक में चिन्तवन)

(श्लोक)

सिद्धं संपूर्ण भव्यार्थ सिद्धेः कारण मुत्तमम्।
प्रशस्त दर्शन ज्ञान चारित्रं प्रतिपादनम्।।

भावार्थ—सम्पूर्ण भव्यों के लिये इष्ट सिद्धि के सर्वोत्तम कारण तथा सम्यग्दर्शन--ज्ञान--चारित्र के प्रतिपादन करने वाले अनंतानंत सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।

(श्लोक)

सुरेन्द्र मुकुटाश्लिष्टपाद पद्मांशु केशरम्।
प्रणमामि महावीरं लोक त्रितय मंगलम्।।

भावार्थ—प्रमाण करते हुये इन्द्रों के मुकुटों पर जिन प्रभु के चरणों की प्रभा प्रकाशमान हो रही है ऐसे तीनों लोकों के मंगल स्वरूप श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार हो।

(श्लोक)

सिद्ध वस्तु वचो भक्त्या सिद्धान् प्रणमतां-सदा।
सिद्ध कार्याः शिवं प्राप्ताः सिद्धिंददतुनोऽव्ययाम्।।

भावार्थ—सिद्ध हो चुके हैं समस्त कार्य जिनके तथा परम सुख को प्राप्त हुए सम्पूर्ण सिद्धों को भक्तिवश हम प्रणाम करते हैं। वे सिद्ध प्रभु हमें अविनाशी मोक्ष सिद्धि प्रदान करें।

(श्लोक)

नमोऽस्तु धूत पापेभ्यः सिद्धेभ्यः ऋषि परिषदे।
सामायिक प्रपद्येऽहं भव-भ्रमण सूदनम्।।

भावार्थ—मैं निर्दोष सिद्धों को तथा मुनि समुदाय को नमस्कार करता हूँ तथा संसार के परिभ्रमण को नाश करने वाली सामायिक को धारण करता हूँ।

(श्लोक)

दव्वे खेत्ते काले भावेय कदा वराहसो हयणम्।
णिन्दण गरहण जुत्तो मण, बच, कायेण पाडिकमणम्।।

भावार्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, से मैंने कभी किसी की निन्दा, गर्हा की हो तो मैं मन, वचन, काय से उसका प्रतिक्रमण (पश्चाताप) करता हूँ।

(श्लोक)

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्तिमे सव्व भूदेसु, वैरंमज्झ ण केणवि।।

अर्थ—मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ सब जीव मुझ पर

क्षमा करें मेरा सब प्राणियों से मैत्री भाव है किसी से बैर भाव नहीं है।

(श्लोक)

समता सर्व भूतेषु संयमः शुभ भावना।
आर्त रौद्र परित्याग स्तद्धि सामायिकं व्रतम्॥

अर्थ—सर्व प्राणियों में सम भाव रखना संयम पालन करना, पवित्र भाव रखना तथा आर्त—रौद्र परिणामों को छोड़ना ही सच्चा सामायिक व्रत है।

(श्लोक)

साम्य मे सर्व भूतेषु, वैर मम न केनचित्।
आशा सर्वाः परित्यज्य समाधि महमाश्रये॥

अर्थ—मैं सम्पूर्ण प्राणियों में समता रखता हूँ किसी से बैर भाव नहीं है। मैं सर्व आशाओं को छोड़कर समाधि का आश्रय लेता हूँ।

(श्लोक)

रागात् द्वेषात् ममत्वाद्वा हा मया ये विराधिताः।
क्षम्यन्तु जन्तवस्ते मे, तेभ्यो क्षाम्याम्यहं पुनः॥

अर्थ—राग, द्वेष अथवा मोह से मैंने किसी जीव का विराधन किया हो तो वे मुझ पर क्षमा करें, मैं भी उनसे बार—बार क्षमा चाहता हूँ।

(श्लोक)

मनसा, वपुषा वाचा, कृत कारित सम्मतैः।
रत्नत्रये भवाः दोषान् गर्हे निन्दामि वर्जये॥

अर्थ—मन, वचन, काया से अथवा कृत कारित, अनुमोदना, से मैंने अपने रत्नत्रय में जो दोष लगाये हों उनकी मैं निन्दा गर्हा करता हूँ और उनका परित्याग करता हूँ।

(श्लोक)

तैरश्च, मानवं, दैवमुपसर्गं सहेऽधुना।
काया-हार कषायादीन्, प्रत्याख्यामि त्रिशुद्धितः।

अर्थ—तिर्यञ्च, मनुष्य या देव कृत उपसर्ग को मैं इस समय धैर्य पूर्वक सहन करूँगा तथा शरीर आहार व कषायों को मन, वचन, काय से छोड़ता हूँ।

(श्लोक)

रागं द्वेषं भयं शोकं प्रहर्षौत्सुक्यदीनताः।
व्युत्सृजामि त्रिधा, सर्वा मरतिं रतिमेव च।।

अर्थ—मैं राग, द्वेष, भय, शोक हर्ष, विषाद दीनता तथा सब प्रकार की प्रीति और अप्रीति को मन वचन काय से छोड़ता हूँ।

(श्लोक)

जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये।
बन्धवारौ सुखे दुःखे सर्वदा समता मम।।

अर्थ—जीवन, मरण, लाभ--हानि, योग--वियोग, बन्धु--शत्रु, तथा सुख--दुःख में मेरे सदा समता भाव रहें।

(श्लोक)

आत्मैव मे सदा ज्ञाने दर्शने चरणे तथा।
प्रत्याख्याने ममात्मैव, तथा संवरयोगयोः।।

अर्थ—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा प्रत्याख्यान संवर और योग मम आत्म स्वरूप हैं अर्थात् आत्मा से ये कोइ भिन्न पदार्थ नहीं है।

(श्लोक)

एको मे शाश्वतश्चात्मा, ज्ञान, दर्शन लक्षणः।
शेषा वहिर्भवाः भावाः सर्वे संयोग लक्षणः।।

अर्थ—मैं एक शाश्वत् त्रिकाल स्थायी चैतन्य आत्मा हूँ, ज्ञान दर्शन ही मेरा सत्य लक्षण है, शेष रागादि भाव बाह्य पदार्थों के संयोग से पैदा होते है इसलिये मुझसे सर्वथा भिन्न हैं।

(श्लोक)

संयोगमूलं जीवेन, प्राप्ता दुःख परम्परा।
तस्मात् संयोगसम्बन्धं त्रिधा सर्वं त्यजाभ्यहं।।

अर्थ—संयोग जन्य रागादिक भावों से ही मैंने अनादि परम्परा से अनन्त दुःख भोगे हैं इसलिये अब मैं इन संयोगिक भावों को मन, वचन, काय, से छोड़ता हूँ।

(श्लोक)

एवं सामायिकात् सम्यक् सामायिकमखंडितम्।
वर्तता मुक्ति मानिन्या, वशी चूर्णयितं ममूः।।

अर्थ—इस प्रकार समता पूर्वक की गई अखंड 'सामायिक' मुक्ति (रमा) को वश में करने के लिये मोहनी चूर्ण है।

(श्लोक)

भगवन् नमोऽस्तु प्रसीदतु प्रभु पादान्।
वंदिष्येऽहमिति एषोऽहं सर्व सावद्य योग विरतोऽस्मि।।

अर्थ—हे भगवन् ! मैं आपके चरणों की वंदना करता हुआ नमस्कार करता हूँ और सब पाप कर्मों से विरक्त होता हूँ।

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्ञामि, अरहंते सरणं पव्वज्ञामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्ञामि, साहू सरणं पव्वज्ञामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्ञामि।

ॐ नमोऽर्हते झौं झौं स्वाहा-

(अरहंत भक्ति पूर्वक सामायिक की दृढ प्रतिज्ञा)

अड्ढइज्चेसुदीवेसुदो समुदेसुपंणारसकम्मभूमिसु अरहंताण भयवंताण अदीदरायाणं तित्थयराणं धम्माइरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंग चक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं सदा करेमि किरियम्मि करेमि भंते सामायियं सव्व सावज्ञोगं पचक्खामि जावनियमं तिविहेण मणसा वचियाकायेण णकरेमि णकारयेमि अंणंकरं तमपि ण समणुमण्णमि। तस्स भत्ति। अइच्चारं पडिक्कमामि। णिंदामि अण्णाणं गर्हामि अप्पाणं

जावदरहंताणं भयवन्ताणं पज्जुवासं करेमि
तावकायं पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि

भावार्थ—ढाई द्वीप, दो समुद्र, पन्द्रह कर्म भूमियों में जो अर्हंत आदि तीर्थंकर धर्माचार्य धर्मोपदेशक धर्मनायक धर्म चक्रवर्ती देवाधिदेव और ज्ञानी हैं, उनकी मैं वंदनादिक क्रिया करता हूँ, और हे भगवन् ! सामायिक स्वीकार करता हूँ तथा सर्व पापों का त्याग कर इन पापों को सामायिक समय पर्यंत मन--वचन--काय से न करूँगा, न कराउँगा और न करते हुये की अनुमोदना करुंगा। मैं अतिचारों का त्याग, अज्ञान की निंदा व अपनी दूषित आत्मा का तिरस्कार करता हूँ। मैं अरहंत भगवान की उपासना करूंगा, तब तक पाप कर्म और दुष्ट आचरणों का त्याग करता हूँ।

अथ— अपरान्हिक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्म क्षयार्थं सामायिक समेतं कायोत्सर्ग करोम्यहम्

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करें)

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सर्वसामान्य प्रतिक्रमण–आवश्यक

प्रतिक्रमणना बे प्रकार छे : (१) निश्चय अने (२) व्यवहार.

निश्चय-प्रतिक्रमणनी व्याख्या[1] :–

पूर्वे करेलुं जे अनेक प्रकारना विस्तारवाळुं शुभाशुभ कर्म तेनाथी जे आत्मा पोताने निवर्तावे छे (पाछो वाळे छे), ते आत्मा प्रतिक्रमण छे.

व्यवहार–प्रतिक्रमणनी व्याख्या[2] :–

पोतानां शुभाशुभ कर्मनो आत्मनिंदापूर्वक त्याग करवानो भाव–आत्माना एवा विशुद्ध परिणाम के जेमां अशुभ परिणामोनी निवृत्ति थाय.

प्रतिक्रमणना नीचे प्रमाणे छ विभाग छे :–

(१) सामायिक,
(२) तीर्थंकर भगवाननी स्तुति,
(३) वंदन,
(४) प्रतिक्रमण,
(५) कायोत्सर्ग,
(६) प्रत्याख्यान.

(विदेहक्षेत्रमां विचरंता भगवान श्री सीमंधरप्रभुनी आज्ञा लईने प्रतिक्रमण शरू करवुं.)

---

१ समयसार गाथा ३८३

२ श्रावकप्रतिक्रमण (पंडित नंदलालजीकृत प्रस्तावनामांथी)

पाठ १ लो

मंगलाचरण : नमस्कार–मंत्र

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

अर्थ:–श्री अरिहंतोने नमस्कार हो, सिद्धोने नमस्कार हो, आचार्योने नमस्कार हो, उपाध्यायोने नमस्कार हो अने लोकमां रहेला सर्व साधुओने नमस्कार हो.[1]

अरिहंत सिद्ध आचार्य ने, उपाध्याय मुनिराज,
पंच पद व्यवहारथी, निश्चये आत्मामां ज. १०४[2]

*

पाठ २ जो

वंदना (तिक्खुत्तो)

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, वंदामि, णमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेईयं, पज्जुवासामि.

अर्थ:—पंच परमेष्ठीने बे हाथ जोडी आवर्तनथी त्रण वखत प्रदक्षिणा करी हुं स्तुति करुं छुं, नमस्कार करुं छुं; विनयथी सत्कार करुं छुं, विवेकपूर्वक सन्मान करुं छुं. हे पूज्य! आप कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, ज्ञानरूप छो तेथी आपनी पर्युपासना–सेवा करुं छुं.

---

१. आ पंच परमेष्ठीनुं स्वरूप मोक्षमार्गप्रकाशक (गुजराती) पाना २ थी ६ सुधीमां छे, जिज्ञासुओ त्यांथी जोइ लेवुं.

२. योगीन्द्रदेवकृत योगसारमांथी

पाठ ३ जो★

आत्माना केवा भावने श्री भगवान सामायिक कहे छे ते हवे कहेवाय छे :—

जे समतामां लीन थई, करे अधिक अभ्यास;
अखिल कर्म ते क्षय करी, पामे शिवपुर वास. ६२.
सर्व जीव छे ज्ञानमय, जाणे समता धार;
ते सामायिक जिन कहे, प्रगट करे भवपार. ६८.
राग–द्वेष बे त्यागीने, धारे समता भाव;
सामायिक चारित्र ते, कहे जिनवर मुनिराव. ६६.

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ ।
तस्स सामाइगं टाई इदि केवलिसासणे ॥१२५॥

(हरिगीत)

सावद्यविरत, त्रिगुप्त छे, इन्द्रियसमूह निरुद्ध छे,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२५.[1]

अर्थ :—जे सर्व सावद्यक्रियाथी विरक्त थई, त्रण गुप्तिओने धारीने पोतानी इन्द्रियोने गोपवे छे, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे एम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा ।
तस्स सामाइगं टाई इदि केवलिसासणे ॥१२६॥

स्थावर अने त्रस सर्व भूतसमूहमां समभाव छे,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२६.

★ योगीन्द्रदेवकृत योगसारमांथी.

१. आ नं. १२५ थी १३३ सुधीनी गाथाओ श्री नियमसारनी छे.

अर्थ :–जे सर्व त्रस अने स्थावर प्राणीओमां समताभाव राखे छे, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे एम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१२७॥

संयम, नियम ने तप विषे आत्मा समीप छे जेहने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२७.

अर्थ :–संयम पाळतां, नियम करतां तथा तप धरतां एक आत्मा ज जेने समीप वर्ते छे, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे एम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेति दु ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१२८॥

नहि राग अथवा द्वेषरूप विकार जन्मे जेहने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२८.

अर्थ :–जेने राग-द्वेष विकार पेदा थतो नथी, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे एम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१२९॥

जे नित्य वर्जे आर्त तेम ज रौद्र बंने ध्यानने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १२९.

अर्थ :–जे नित्य आर्त अने रौद्र ध्यानोने टाळे छे, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे एम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१३०॥

जे नित्य वर्जे पुण्य तेम ज पाप बन्ने भावने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३०.

अर्थ:–जे कोई नित्य पुण्य अने पापभावोने त्यागे छे, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे अेम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

जो दु हस्सं रई सोगं अरतिं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१३१॥

जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१३२॥

जे नित्य वर्जे हास्यने, रति अरति तेम ज शोकने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३१.

जे नित्य वर्जे भय जुगुप्सा, वर्जतो सौ वेदने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३२.

अर्थ:–जे हास्य, शोक, रति, अरति, जुगुप्सा, भय, त्रण प्रकारना वेद अेम सर्वे नोकषायने नित्य दूर राखे छे, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे अेम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१३३॥

जे नित्य ध्यावे धर्म तेम ज शुक्ल उत्तम ध्यानने,
स्थायी समायिक तेहने भाख्युं श्री केवळीशासने. १३३.

अर्थ:–जे कोई नित्ये धर्मध्यान अने शुक्लध्यानने ध्यावे छे, तेने स्थायी (खरी) सामायिक होय छे एम श्री केवळी भगवाने आगममां कह्युं छे.

पाठ ४ थो

हवे तीर्थंकर भगवाननी साची स्तुतिनुं स्वरूप कहेवामां आवे छे :–

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥३१॥

जीती इन्द्रियो ज्ञानस्वभावे अधिक जाणे आत्मने,
निश्चय विषे स्थित साधुओ भाखे जितेंद्रिय तेहने. ३१.*

अर्थ:–जे इन्द्रियोने जीतीने ज्ञानस्वभाव वडे अन्यद्रव्यथी अधिक आत्माने जाणे छे तेने, जे निश्चयनयमां स्थित साधुओ छे तेओ, खरेखर जितेन्द्रिय कहे छे.

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति ॥३२॥

जीती मोह ज्ञानस्वभावथी जे अधिक जाणे आत्मने,
परमार्थना विज्ञायको ते साधु जितमोही कहे. ३२.

अर्थ:–जे मुनि मोहने जीतीने पोताना आत्माने ज्ञानस्वभाव वडे अन्यद्रव्यभावोथी अधिक जाणे छे ते मुनिने परमार्थना जाणनाराओ जितमोह कहे छे.

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स ।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥३३॥

★ पाठ ४था तथा ७मामां जे गाथाओ छे ते श्री समयसारनी छे.

जितमोह साधु तणो वळी क्षय मोह ज्यारे थाय छे,
निश्चयविदो थकी तेहने क्षीणमोह नाम कथाय छे. ३३.

अर्थ:—जेणे मोहने जीत्यो छे एवा साधुने ज्यारे मोह क्षीण थई सत्तामांथी नाश थाय त्यारे निश्चयना जाणनारा निश्चयथी ते साधुने 'क्षीणमोह' एवा नामथी कहे छे.

*

*पाठ ५ मो

आत्मानुं स्वरूप जाणवा आत्माना छ पदनो पाठ कायोत्सर्ग (काउसग्ग) रूपे कहेवामां आवे छे:—

(नमस्कार मंत्र बोलवो)

अनन्य शरणना आपनार एवा श्री सद्गुरुदेवने
अत्यंत भक्तिथी नमस्कार.

शुद्ध आत्मस्वरूपने पाम्या छे एवा ज्ञानीपुरुषोए नीचे कह्यां छे ते छ पदने सम्यग्दर्शनना निवासनां सर्वोत्कृष्ट स्थानक कह्यां छे.

प्रथम पद:—'आत्मा छे.' जेम घट पट आदि पदार्थो छे तेम आत्मा पण छे. अमुक गुण होवाने लीधे जेम घट पट आदि होवानुं प्रमाण छे, तेम स्वपरप्रकाशक एवी चैतन्यसत्तानो प्रत्यक्ष गुण जेने विषे छे एवो आत्मा होवानुं प्रमाण छे.

बीजुं पद:—'आत्मा नित्य छे.' घट पट आदि पदार्थो अमुक काळवर्ती छे, आत्मा त्रिकाळवर्ती छे. घटपटादि संयोगे करी पदार्थ छे, आत्मा स्वभावे करीने पदार्थ छे; केम के तेनी उत्पत्ति माटे कोई पण संयोगो अनुभवयोग्य थता नथी. कोई पण संयोगी द्रव्यथी चेतनसत्ता प्रगट थवायोग्य नथी, माटे अनुत्पन्न छे. असंयोगी होवाथी

★ श्रीमद् राजचंद्रमांथी

अविनाशी छे, केम के जेनी कोई संयोगथी उत्पत्ति न होय, तेनो कोईने विषे लय पण होय नहीं.

त्रीजुं पद:–'आत्मा कर्ता छे.' सर्व पदार्थ अर्थक्रियासंपन्न छे. कंई ने कंई परिणामक्रिया सहित ज सर्व पदार्थ जोवामां आवे छे. आत्मा पण क्रियासंपन्न छे. क्रियासंपन्न छे, माटे कर्ता छे. ते कर्तापणुं त्रिविध श्री जिने विवेच्युं छे. परमार्थथी स्वभावपरिणतिओ निजस्वरूपनो कर्ता छे. अनुपचरित (अनुभवमां आववायोग्य विशेष संबंधसहित) व्यवहारथी ते आत्मा द्रव्यकर्मनो कर्ता छे. उपचारथी घर, नगर आदिनो कर्ता छे.

चोथुं पद:–'आत्मा भोक्ता छे.' जे जे कंई क्रिया छे ते ते सर्व सफळ छे, निरर्थक नथी. जे कंई पण करवामां आवे तेनुं फळ भोगववामां आवे ओवो प्रत्यक्ष अनुभव छे. विष खाधाथी विषनुं फळ; साकर खावाथी साकरनुं फळ; अग्निस्पर्शथी ते अग्निस्पर्शनुं फळ; हिमने स्पर्श करवाथी हिमस्पर्शनुं फळ जेम थया विना रहेतुं नथी, तेम कषायादि के अकषायादि जे कंई पण परिणामे आत्मा प्रवर्ते तेनुं फळ पण थवायोग्य ज छे, अने ते थाय छे. ते क्रियानो आत्मा कर्ता होवाथी भोक्ता छे.

पांचमुं पद:–'मोक्षपद छे.' जे अनुपचरित व्यवहारथी जीवने कर्मनुं कर्तापणुं निरूपण कर्युं, कर्तापणुं होवाथी भोक्तापणुं निरूपण कर्युं, ते कर्मनुं टळवापणुं पण छे; केम के प्रत्यक्ष कषायादिनुं तीव्रपणुं होय पण तेना अनभ्यासथी, तेना अपरिचयथी, तेने उपशम करवाथी, तेनुं मंदपणुं देखाय छे, ते क्षीण थवायोग्य देखाय छे, क्षीण थई शके छे. ते ते बंधभाव क्षीण थई शकवायोग्य होवाथी तेथी रहित ओवो जे शुद्ध आत्मस्वभाव ते रूप मोक्षपद छे.

छट्ठुं पद:–ते 'मोक्षनो उपाय छे.' जो कदी कर्मबंध मात्र थया करे ओम ज होय, तो तेनी निवृत्ति कोई काळे संभवे नहीं; पण

कर्मबंधथी विपरीत स्वभाववाळां अेवां ज्ञान, दर्शन, समाधि, वैराग्य, भक्ति आदि साधन प्रत्यक्ष छे; जे साधनना बळे कर्मबंध शिथिल थाय छे, उपशम पामे छे, क्षीण थाय छे. माटे ते ज्ञान, दर्शन, संयमादि मोक्षपदना उपाय छे.

(नमस्कार मंत्र बोली कायोत्सर्ग पूरो करवो.)

श्री ज्ञानीपुरुषोअे सम्यग्दर्शनना मुख्य निवासभूत कह्यां अेवां आ छ पद अत्रे संक्षेपमां जणाव्यां छे. समीपमुक्तिगामी जीवने सहज विचारमां ते सप्रमाण थवा योग्य छे, परम निश्चयरूप जणावा योग्य छे, तेनो सर्व विभागे विस्तार थई तेना आत्मांमां विवेक थवा योग्य छे. आ छ पद अत्यंत संदेहरहित छे अेम परमपुरुषे निरूपण कर्युं छे. अे छ पदनो विवेक जीवने स्वस्वरूप समजवाने अर्थे कह्यो छे. अनादि स्वप्नदशाने लीधे उत्पन्न थयेलो अेवो जीवनो अहंभाव, ममत्वभाव ते निवृत्त थवाने अर्थे आ छ पदनी ज्ञानीपुरुषोअे देशना प्रकाशी छे. ते स्वप्नदशाथी रहित मात्र पोतानुं स्वरूप छे अेम जो जीव परिणाम करे, तो सहजमात्रमां ते जागृत थई सम्यग्दर्शनने प्राप्त थाय; सम्यग्दर्शनने प्राप्त थई स्वस्वभावरूप मोक्षने पामे. कोई विनाशी, अशुद्ध अने अन्य अेवा भावने विषे तेने हर्ष, शोक, संयोग, उत्पन्न न थाय. ते विचारे स्वस्वरूपने विषे ज शुद्धपणुं, संपूर्णपणुं, अविनाशीपणुं, अत्यंत आनंदपणुं, अंतररहित तेना अनुभवमां आवे छे. सर्व विभावपर्यायमां मात्र पोताने अध्यासथी अैक्यता थई छे, तेथी केवळ पोतानुं भिन्नपणुं ज छे अेम स्पष्ट—प्रत्यक्ष—अत्यंत प्रत्यक्ष—अपरोक्ष तेने अनुभव थाय छे. विनाशी अथवा अन्य पदार्थना संयोगने विषे तेने इष्ट—अनिष्टपणुं प्राप्त थतुं नथी. जन्म, जरा, मरण, रोगादि बाधारहित संपूर्ण माहात्म्यनुं ठेकाणुं अेवुं निजस्वरूप जाणी, वेदी ते कृतार्थ थाय छे. जे जे पुरुषोने अे छ पद सप्रमाण अेवां परम पुरुषनां वचने आत्मानो निश्चय थयो छे,

ते ते पुरुषो सर्व स्वरूपने पाम्या छे; आधि, व्याधि, उपाधि सर्व संगथी रहित थया छे, थाय छे अने भाविकाळमां पण तेम ज थशे.

जे सत्पुरुषोअे जन्म, जरा, मरणनो नाश करवावाळो, स्वस्वरूपमां सहज अवस्थान थवानो उपदेश कह्यो छे, ते सत्पुरुषोने अत्यंत भक्तिथी नमस्कार छे. तेनी निष्कारण करुणाने नित्य प्रत्ये निरंतर स्तववामां पण आत्मस्वभाव प्रगटे छे, अेवा सर्व सत्पुरुषो, तेना चरणारविंद सदाय हृदयने विषे स्थापन रहो!

जे छ पदथी सिद्ध छे अेवुं आत्मस्वरूप ते जेनां वचनने अंगीकार कर्ये सहजमां प्रगटे छे, जे आत्मस्वरूप प्रगटवाथी सर्वकाळ जीव संपूर्ण आनंदने प्राप्त थई निर्भय थाय छे, ते वचनना कहेनार अेवा सत्पुरुषना गुणनी व्याख्या करवाने अशक्ति छे, केम के जेनो प्रत्युपकार न थई शके अेवो परमात्मभाव ते जेणे कंई पण इच्छ्या विना मात्र निष्कारण करुणाशीलताथी आप्यो, अेम छतां पण जेणे अन्य जीवने विषे आ मारो शिष्य छे, अथवा भक्तिनो कर्ता छे, माटे मारो छे, अेम कदी जोयुं नथी, अेवा जे सत्पुरुष, तेने अत्यंत भक्तिअे फरी फरी नमस्कार हो!

जे सत्पुरुषोअे सद्गुरुनी भक्ति निरूपण करी छे, ते भक्ति मात्र शिष्यना कल्याणने अर्थे कही छे. जे भक्तिने प्राप्त थवाथी सद्गुरुना आत्मानी चेष्टाने विषे वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर थई अन्य स्वच्छंद मटे, अने सहेजे आत्मबोध थाय अेम जाणीने जे भक्तिनुं निरूपण कर्युं छे, ते भक्तिने अने ते सत्पुरुषोने फरी फरी त्रिकाळ नमस्कार हो!

जो कदी प्रगटपणे वर्तमानमां केवळज्ञाननी उत्पत्ति थई नथी, पण जेना वचनना विचारयोगे शक्तिपणे केवळज्ञान छे अेम स्पष्ट जाण्युं छे, श्रद्धापणे केवळज्ञान थयुं छे, विचारदशाअे केवळज्ञान थयुं

छे, इच्छादशाओ केवळज्ञान थयुं छे, मुख्य नयना हेतुथी केवळज्ञान वर्ते छे, ते केवळज्ञान सर्व अव्याबाध सुखनुं प्रगट करनार जेना योगे सहजमात्रमां जीव पामवा योग्य थयो, ते सत्पुरुषना उपकारने सर्वोत्कृष्ट भक्तिओ नमस्कार हो! नमस्कार हो!

*

पाठ ६ठ्ठो
श्री सद्गुरु–वंदन

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार. १.

शुं प्रभुचरण कने, धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुओ आपियो, वर्तुं चरणाधीन. २.

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन. ३.

षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यान थकी तरवारवत्, ओ उपकार अमाप. ४.

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत. ५.

परमपुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम. ६.

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित. ७.

*

पाठ ७ मो

(१) समकितनुं साचुं स्वरूप भगवाने केवुं कह्युं छे ते हवे कहेवामां आवे छे. ते समजीने साची श्रद्धा करवी. प्रथम मुख्य बे तत्त्वो जे जीव अने अजीव तेमनुं स्वरूप.

जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥२॥

जीव चरित-दर्शन-ज्ञानस्थित स्वसमय निश्चय जाणवो;
स्थित कर्मपुद्गलना प्रदेशे परसमय जीव जाणवो. २.

अर्थ :—हे भव्य! जे जीव दर्शन–ज्ञान–चारित्रमां स्थित थई रह्यो छे तेने निश्चयथी स्वसमय जाण; अने जे जीव पुद्गलकर्मना प्रदेशोमां स्थित थयेल छे तेने परसमय जाण.

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥११॥

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ छे;
भूतार्थने आश्रित जीव सुदृष्टि निश्चय होय छे. ११.

अर्थ :—व्यवहारनय अभूतार्थ छे अने शुद्धनय भूतार्थ छे एम ऋषीश्वरोए दर्शाव्युं छे; जे जीव भूतार्थनो आश्रय करे छे ते जीव निश्चयथी सम्यग्दृष्टि छे.

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥१३॥

भूतार्थथी जाणेल जीव, अजीव, वळी पुण्य, पाप ने
आसरव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष ते सम्यक्त्व छे. १३.

अर्थ :—भूतार्थ नयथी जाणेल जीव, अजीव वळी पुण्य, पाप

तथा आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध अने मोक्ष—ओ नव तत्त्व सम्यक्त्व छे.

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥१४॥

अबद्धस्पृष्ट, अनन्य ने जे नियत देखे आत्मने,
अविशेष, अणसंयुक्त, तेने शुद्धनय तुं जाणजे. १४.

अर्थ :—जे नय आत्माने बंध रहित ने परना स्पर्श रहित, अन्यपणा रहित, चळाचळता रहित, विशेष रहित, अन्यना संयोग रहित—अेवा पांच भावरूप देखे छे तेने, हे शिष्य ! तुं शुद्धनय जाण.

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं ।
अपदेससन्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५॥

अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जे अविशेष देखे आत्मने,
ते द्रव्य तेम ज भाव जिनशासन सकल देखे खरे. १५.

अर्थ :—जे पुरुष आत्माने अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष (तथा उपलक्षणथी नियत अने असंयुक्त) देखे छे ते सर्व जिनशासनने देखे छे,—के जे जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत तेम ज अभ्यंतर ज्ञानरूप भावश्रुतवाळुं छे.

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं ।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥३४॥

सौ भावने पर जाणीने पचखाण भावोनुं करे,
तेथी नियमथी जाणवुं के ज्ञान प्रत्याख्यान छे. ३४.

अर्थ :—जेथी 'पोताना सिवाय सर्व पदार्थो पर छे' अेम जाणीने प्रत्याख्यान करे छे—त्यागे छे, तेथी, प्रत्याख्यान ज्ञान ज छे अेम

नियमथी जाणवुं, पोताना ज्ञानमां त्यागरूप अवस्था ते ज प्रत्याख्यान छे, बीजुं कांई नथी.

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि ॥३८॥

हुं अेक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी परमाणुमात्र नथी अरे! ३८.

अर्थ :—दर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणमेलो आत्मा अेम जाणे छे के : निश्चयथी हुं अेक छुं, शुद्ध छुं, दर्शनज्ञानमय छुं, सदा अरूपी छुं; कांई पण अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र पण मारुं नथी अे निश्चय छे.

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया ।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥५६॥

वर्णादि गुणस्थानांत भावो जीवना व्यवहारथी,
पण कोई अे भावो नथी आत्मा तणा निश्चय थकी. ५६.

अर्थ :—आ वर्णथी मांडीने गुणस्थान पर्यंत भावो कहेवामां आव्या ते व्यवहारनयथी तो जीवना छे (माटे सूत्रमां कह्या छे), परंतु निश्चयनयना मतमां तेमनामांना कोई पण जीवना नथी.

*

(२) जीव परनो कर्ता नथी पण पोताना भावनो कर्ता छे अे बतावनारुं स्वरूप :—

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥८१॥
एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पोग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥८२॥

जीव कर्मगुण करतो नथी, नहि जीवगुण कर्मो करे;
अन्योन्यना निमित्तथी परिणाम बेउ तणा बने. ८१.
अे कारणे आत्मा ठरे कर्ता खरे निज भावथी;
पुद्गलकरमकृत सर्व भावोनो कदी कर्ता नथी. ८२.

अर्थ :—जीव कर्मना गुणोने करतो नथी तेम ज कर्म जीवना गुणोने करतुं नथी; परंतु परस्पर निमित्तथी बंनेना परिणाम जाणो. आ कारणे आत्मा पोताना ज भावथी कर्ता (कहेवामां आवे) छे परंतु पुद्गलकर्मथी करवामां आवेला सर्व भावोनो कर्ता नथी.

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥८३॥

आत्मा करे निजने ज अे मंतव्य निश्चयनय तणुं,
वळी भोगवे निजने ज आत्मा अेम निश्चय जाणवुं. ८३.

अर्थ :—निश्चयनयनो अेम मत छे के आत्मा पोताने ज करे छे अने वळी आत्मा पोताने ज भोगवे छे अेम हे शिष्य! तुं जाण.

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो ॥८९॥

छे मोहयुत उपयोगना परिणाम त्रण अनादिना,
—मिथ्यात्व ने अज्ञान, अविरतभाव अे त्रण जाणवा. ८९.

अर्थ :—अनादिथी मोहयुक्त होवाथी उपयोगना अनादिथी मांडीने त्रण परिणाम छे; ते मिथ्यात्व, अज्ञान अने अविरतिभाव (अे त्रण) जाणवा.

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥९०॥

अेनाथी छे उपयोग त्रणविध, शुद्ध निर्मळ भाव जे;
जे भाव कंई पण ते करे, ते भावनो कर्ता बने. ९०.

अर्थ :—अनादिथी आ त्रण प्रकार परिणामविकारो होवाथी, आत्मानो उपयोग—जोके (शुद्धनयथी) ते शुद्ध, निरंजन (अेक) भाव छे तोपण—त्रण प्रकारनो थयो थको ते उपयोग जे (विकारी) भावने पोते करे छे ते भावनो ते कर्ता थाय छे.

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं ॥९१॥

जे भाव जीव करे अरे! ज़ीव तेहनो कर्ता बने;
कर्ता थतां, पुद्गल स्वयं त्यां कर्मरूपे परिणमे. ९१.

अर्थ :—आत्मा जे भावने करे छे ते भावनो ते कर्ता थाय छे; ते कर्ता थतां पुद्गलद्रव्य पोतानी मेळे कर्मपणे परिणमे छे.

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥९९॥

परद्रव्यने जीव जो करे तो जरूर तन्मय ते बने,
पण ते नथी तन्मय अरे! तेथी नहीं कर्ता ठरे. ९९.

अर्थ :—ज़ो आत्मा परद्रव्योने करे तो ते नियमथी तन्मय अर्थात् परद्रव्यमय थई जाय; परंतु तन्मय नथी तेथी ते तेमनो कर्ता नथी.

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥१०२॥

जे भाव जीव करे शुभाशुभ तेहनो कर्ता खरे,
तेनुं बने ते कर्म, आत्मा तेहनो वेदक बने. १०२.

अर्थ :—आत्मा जे शुभ के अशुभ (पोताना) भावने करे छे ते

भावनो ते खरेखर कर्ता थाय छे, ते (भाव) तेनुं कर्म थाय छे अने ते आत्मा तेनो (ते भावरूप कर्मनो) भोक्ता थाय छे.

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥१०३॥

जे द्रव्य जे गुण–द्रव्यमां, नहि अन्य द्रव्ये संक्रमे;
अणसंक्रम्युं ते केम अन्य परिणमावे द्रव्यने? १०३.

अर्थः—जे वस्तु (अर्थात् द्रव्य) जे द्रव्यमां अने गुणमां वर्ते छे ते अन्य द्रव्यमां तथा गुणमां संक्रमण पामती नथी (अर्थात् बदलाईने अन्यमां भळी जती नथी); अन्यरूपे संक्रमण नहि पामी थकी ते (वस्तु), अन्य वस्तुने केम परिणमावी शके?

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥१२६॥

जे भावने आत्मा करे, कर्ता बने ते कर्मनो;
ते ज्ञानमय छे ज्ञानीनो, अज्ञानमय अज्ञानीनो. १२६.

अर्थः—आत्मा जे भावने करे छे ते भावरूप कर्मनो ते कर्ता थाय छे; ज्ञानीने तो ते भाव ज्ञानमय छे अने अज्ञानीने अज्ञानमय छे.

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥१२८॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥१२९॥

वळी ज्ञानमय को भावमांथी ज्ञानभाव ज ऊपजे,
ते कारणे ज्ञानी तणा सौ भाव ज्ञानमयी खरे; १२८.

अज्ञानमय को भावथी अज्ञानभाव ज ऊपजे,
ते कारणे अज्ञानीना अज्ञानमय भावो बने. १२६.

अर्थ :–कारण के ज्ञानमय भावमांथी ज्ञानमय ज भाव उत्पन्न थाय छे तेथी ज्ञानीना सर्व भावो खरेखर ज्ञानमय ज होय छे. अने, कारण के अज्ञानमय भावमांथी अज्ञानमय ज भाव उत्पन्न थाय छे तेथी अज्ञानीना भावो अज्ञानमय ज होय छे.

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादओ भावा ।
अयमययया भावादो जह जायंते दु कडयादी ॥१३०॥

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥१३१॥

ज्यम कनकमय को भावमांथी कुंडलादिक ऊपजे,
पण लोहमय को भावथी कटकादि भावो नीपजे; १३०.

त्यम भाव बहुविध ऊपजे अज्ञानमय अज्ञानीने,
पण ज्ञानीने तो सर्व भावो ज्ञानमय अेम ज बने. १३१.

अर्थ :–जेम सुवर्णमय भावमांथी सुवर्णमय कुंडळ वगेरे भावो थाय छे अने लोहमय भावमांथी लोहमय कडां वगेरे भावो थाय छे, तेम अज्ञानीने (अज्ञानमय भावमांथी) अनेक प्रकारना अज्ञानमय भावो थाय छे अने ज्ञानीने (ज्ञानमय भावमांथी) सर्व ज्ञानमय भावो थाय छे.

*

(३) पुण्य अने पापनुं स्वरूप

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं ।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥१४५॥

छे कर्म अशुभ कुशील ने जाणो सुशील शुभकर्मने !
ते केम होय सुशील जे संसारमां दाखल करे? १४५.

अर्थ :–अशुभ कर्म कुशील छे (–खराब छे) अने शुभ कर्म सुशील छे (–सारुं छे) एम तमे जाणो छो! ते सुशील केम होय के जे (जीवने) संसारमां प्रवेश करावे छे?

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥१४६॥

ज्यम लोहनुं त्यम कनकनुं जंजीर जकडे पुरुषने,
एवी रीते शुभ के अशुभ कृत कर्म बांधे जीवने. १४६.

अर्थ :–जेम सुवर्णनी बेडी पण पुरुषने बांधे छे अने लोखंडनी पण बांधे छे, तेवी रीते शुभ तेम ज अशुभ करेलुं कर्म जीवने (अविशेषपणे) बांधे छे.

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि ।
तं सव्वं बालतवं बालवदं बेंति सव्वण्हू ॥१५२॥

परमार्थमां अणस्थित जे तपने करे, व्रतने धरे,
सघळुंय ते तप बाळ ने व्रत बाळ सर्वज्ञो कहे. १५२.

अर्थ :–परमार्थमां अस्थित एवो जे जीव तप करे छे तथा व्रत धारण करे छे, तेनां ते सर्व तप अने व्रतने सर्वज्ञो बाळतप अने बाळव्रत कहे छे.

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥१५३॥

व्रतनियमने धारे भले, तपशीलने पण आचरे,
परमार्थथी जे बाह्य ते निर्वाणप्राप्ति नहीं करे. १५३.

अर्थ :–व्रत अने नियमो धारण करता होवा छतां तेम ज शील

अने तप करता होवा छतां जेओ परमार्थथी बाह्य छे (अर्थात् परम पदार्थरूप ज्ञाननुं अेटले के ज्ञानस्वरूप आत्मानुं जेमने श्रद्धान नथी) तेओ निर्वाणने पामता नथी.

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसारगमणहेदुं पि मोक्खहेदुं अजाणंता ।।१५४।।

परमार्थबाह्य जीवो अरे! जाणे न हेतु मोक्षनो,
अज्ञानथी ते पुण्य इच्छे हेतु जे संसारनो. १५४.

अर्थः—जेओ परमार्थथी बाह्य छे तेओ मोक्षना हेतुने नहि जाणता थका—जोके पुण्य संसारगमननो हेतु छे तोपण—अज्ञानथी पुण्यने (मोक्षनो हेतु जाणीने) इच्छे छे.

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ।।१६०।।

ते सर्वज्ञानी-दर्शी पण निज कर्मरज-आच्छादने,
संसारप्राप्त न जाणतो ते सर्व रीते सर्वने. १६०.

अर्थः—ते आत्मा (स्वभावथी) सर्वने जाणनारो तथा देखनारो छे तोपण पोताना कर्ममळथी खरडायो—व्याप्त थयो—थको संसारने प्राप्त थयेलो ते सर्व प्रकारे सर्वने जाणतो नथी.

(४) आस्रवनुं स्वरूप

जीवमां थता विकारी भावो (आस्रव) छोडवा लायक छे अेम बतावनारुं स्वरूप

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु ।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ।।१६४।।
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ।।१६५।।

मिथ्यात्व ने अविरत, कषायो, योग संज्ञ असंज्ञ छे,
अे विविध भेदे जीवमां, जीवना अनन्य परिणाम छे; १६४.
वळी तेह ज्ञानावरणआदिक कर्मनां कारण बने,
ने तेमनुं पण जीव बने जे रागद्वेषादिक करे. १६५.

अर्थः—मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय अने योग—अे आस्रवो संज्ञ (अर्थात् चेतनना विकार) पण छे अने असंज्ञ (अर्थात् पुद्गलना विकार) पण छे. विविध भेदवाळा संज्ञ आस्रवो—के जेओ जीवमां उत्पन्न थाय छे तेओ—जीवना ज अनन्य परिणाम छे. वळी असंज्ञ आस्रवो ज्ञानावरण आदि कर्मनुं कारण (निमित्त) थाय छे अने तेमने पण (अर्थात् असंज्ञ आस्रवोने पण कर्मबंधनुं निमित्त थवामां) रागद्वेषादि भाव करनारो जीव कारण (निमित्त) थाय छे.

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि ।
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥६९॥
कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ॥७०॥

आत्मा अने आस्रव तणो ज्यां भेद जीव जाणे नहीं,
क्रोधादिमां स्थिति त्यां लगी, अज्ञानी अेवा जीवनी. ६९.
जीव वर्ततां क्रोधादिमां संचय करमनो थाय छे,
सहु सर्वदर्शी अे रीते बंधन कहे छे जीवने. ७०.

अर्थः—जीव ज्यां सुधी आत्मा अने आस्रव—अे बन्नेना तफावत अने भेदने जाणतो नथी त्यां सुधी ते अज्ञानी रह्यो थको क्रोधादिक आस्रवोमां प्रवर्ते छे; क्रोधादिकमां वर्तता तेने कर्मनो संचय थाय छे. खरेखर आ रीते जीवने कर्मोनो बंध सर्वज्ञदेवोअे कह्यो छे.

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥७१॥

आ जीव ज्यारे आस्रवोनुं तेम निज आत्मा तणुं
जाणे विशेषांतर, तदा बंधन नहीं तेने थतुं. ७१.

अर्थ :—ज्यारे आ जीव आत्माना अने आस्रवोना तफावत अने भेदने जाणे त्यारे तेने बंध थतो नथी.

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवा ॥७२॥

अशुचिपणुं, विपरीतता अे आस्रवोनां जाणीने,
वळी जाणीने दुःखकारणो, अेथी निवर्तन जीव करे. ७२.

अर्थ :—आस्रवोनुं अशुचिपणुं अने विपरीतपणुं तथा तेओ दुःखना कारण छे अेम जाणीने जीव तेमनाथी निवृत्ति करे छे.

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफल त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं ॥७४॥

आ सर्व जीवनिबद्ध, अध्रुव, शरणहीन, अनित्य छे,
अे दुःख, दुःखफळ जाणीने अेनाथी जीव पाछो वळे. ७४.

अर्थ :—आ आस्रवो जीवनी साथे निबद्ध छे, अध्रुव छे, अनित्य छे तेम ज अशरण छे, वळी तेओ दुःखरूप छे, दुःख ज जेमनुं फळ छे अेवा छे,—अेवुं जाणीने ज्ञानी तेमनाथी निवृत्ति करे छे.

*

(५) संवरनुं स्वरूप

जीवना शुभाशुभ भावो केम अटकाववा ते बतावनारुं स्वरूप

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो ।
कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥१८१॥

उपयोगमां उपयोग, को उपयोग नहि क्रोधादिमां,
छे क्रोध क्रोध महीं ज, निश्चय क्रोध नहि उपयोगमां. १८१.

अर्थ :—उपयोग उपयोगमां छे, क्रोधादिकमां कोई उपयोग नथी; वळी क्रोध क्रोधमां ज छे, उपयोगमां निश्चयथी क्रोध नथी.

जह कणयमग्गितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥१८४॥

ज्यम अग्नितप्त सुवर्ण पण निज स्वर्णभाव नहीं तजे,
त्यम कर्मउदये तप्त पण ज्ञानी न ज्ञानीपणुं तजे. १८४.

अर्थ :—जेम सुवर्ण अग्निथी तप्त थयुं थकुं पण तेना सुवर्णपणाने छोडतुं नथी तेम ज्ञानी कर्मना उदयथी तप्त थयो थको पण ज्ञानीपणाने छोडतो नथी.

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ॥१८६॥

जे शुद्ध जाणे आत्मने ते शुद्ध आत्म ज मेळवे;
अणशुद्ध जाणे आत्मने अणशुद्ध आत्म ज ते लहे. १८६.

अर्थ :—शुद्ध आत्माने जाणतो—अनुभवतो जीव शुद्ध आत्माने ज पामे छे अने अशुद्ध आत्माने जाणतो—अनुभवतो जीव अशुद्ध आत्माने ज पामे छे.

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोगेसु ।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥१८७॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥१८८॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥१८९॥

पुण्यपापयोगथी रोकीने निज आत्मने आत्मा थकी,
दर्शन अने ज्ञाने ठरी, परद्रव्यइच्छा परिहरी. १८७.

जे सर्वसंगविमुक्त, ध्यावे आत्मने आत्मा वडे,–
–नहि कर्म के नोकर्म, चेतक चेततो अेकत्वने, १८८.
ते आत्म ध्यातो, ज्ञानदर्शनमय, अनन्यमयी खरे,
बस अल्प काळे कर्मथी प्रविमुक्त आत्माने वरे. १८९.

अर्थ :–आत्माने आत्मा वडे बे पुण्य–पापरूप शुभाशुभ-योगोथी रोकीने दर्शनज्ञानमां स्थित थयो थको अने अन्य (वस्तु)नी इच्छाथी विरम्यो थको, जे आत्मा, (इच्छारहित थवाथी) सर्व संगथी रहित थयो थको, (पोताना) आत्माने आत्मा वडे ध्यावे छे–कर्म अने नोकर्मने ध्यातो नथी, (पोते) [१]चेतयिता (होवाथी) अेकत्वने ज चिंतवे छे–चेते छे–अनुभवे छे, ते (आत्मा) आत्माने ध्यातो, दर्शनज्ञानमय अने [२]अनन्यमय थयो थको अल्प काळमां ज कर्मथी रहित आत्माने पामे छे.

*

(६) निर्जरानुं स्वरूप

संवरपूर्वक जे पूर्वना विकारी भावोने तथा पूर्वे बांधेला कर्मोने टाळे छे तेने निर्जरा कहे छे, ते बतावनारुं स्वरूप.

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ॥१९८॥

कर्मो तणो जे विविध उदयविपाक जिनवर वर्णव्यो,
ते मुज स्वभावो छे नहीं, हुं अेक ज्ञायकभाव छुं. १९८.

अर्थ :–कर्मोना उदयनो विपाक (फळ) जिनवरोओ अनेक प्रकारनो वर्णव्यो छे ते मारा स्वभावो नथी; हुं तो अेक ज्ञायकभाव छुं.

---

१. चेतयिता = चेतनार; देखनार–जाणनार.

२. अनन्यमय = अन्यमय नहि अेवो.

पोग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमेक्को ॥१९९॥

पुद्गलकरमरूप रागनो ज विपाकरूप छे उदय आ,
आ छे नहीं मुज भाव, निश्चय एक ज्ञायकभाव छुं. १९९.

अर्थः—राग पुद्गलकर्म छे, तेनो विपाकरूप उदय आ छे, आ मारो भाव नथी; हुं तो निश्चयथी एक ज्ञायकभाव छुं.

एवं सम्मद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं ।
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो ॥२००॥

सुदृष्टि ए रीत आत्मने ज्ञायकस्वभाव ज जाणतो,
ने उदय कर्मविपाकरूप ते तत्त्वज्ञायक छोडतो. २००.

अर्थः—आ रीते सम्यग्दृष्टि आत्माने (पोताने) ज्ञायकस्वभाव जाणे छे अने तत्त्वने अर्थात् यथार्थ स्वरूपने जाणतो थको कर्मना विपाकरूप उदयने छोडे छे.

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥२०१॥

अणुमात्र पण रागादिनो सद्भाव वर्ते जेहने,
ते सर्वआगमधर भले पण जाणतो नहि आत्मने. २०१.

अर्थः—खरेखर जे जीवने परमाणुमात्र—लेशमात्र—पण रागादिक वर्ते छे ते जीव भले सर्व आगम भणेलो होय तोपण आत्माने नथी जाणतो.

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ ॥२०८॥

परिग्रह कदी मारो बने तो हुं अजीव बनुं खरे,
हुं तो खरे ज्ञाता ज, तेथी नहि परिग्रह मुज बने. २०८.

अर्थ :—जो परद्रव्य—परिग्रह मारो होय तो हुं अजीवपणाने पामुं, कारण के हुं तो ज्ञाता ज छुं तेथी (परद्रव्यरूप) परिग्रह मारो नथी.

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ ॥२०९॥

छेदाव, वा भेदाव, को लई जाव, नष्ट बनो भले,
वा अन्य को रीत जाव, पण परिग्रह नथी मारो खरे. २०९.

अर्थ :—छेदाई जाओ, अथवा भेदाई जाओ, अथवा कोई लई जाओ, अथवा नष्ट थई जाओ, अथवा तो गमे ते रीते जाओ, तोपण खरेखर परिग्रह मारो नथी.

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१०॥

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे पुण्यने,
तेथी न परिग्रही पुण्यनो ते, पुण्यनो ज्ञायक रहे. २१०.

अर्थ :—अनिच्छकने अपरिग्रही कह्यो छे अने ज्ञानी धर्मने (पुण्यने) इच्छतो नथी, तेथी ते धर्मनो परिग्रही नथी, (धर्मनो) ज्ञायक ज छे.

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२११॥

अनिच्छक कह्यो अपरिग्रही, ज्ञानी न इच्छे पापने,
तेथी न परिग्रही पापनो ते, पापनो ज्ञायक रहे. २११.

अर्थ :—अनिच्छकने अपरिग्रही कह्यो छे अने ज्ञानी अधर्मने (पापने) इच्छतो नथी, तेथी ते अधर्मनो परिग्रही नथी, (अधर्मनो) ज्ञायक ज छे.

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥२२८॥

सम्यक्त्ववंत जीवो निःशंकित, तेथी छे निर्भय अने
छे सप्तभयप्रविमुक्त जेथी, तेथी ते निःशंक छे. २२८.

अर्थ :—सम्यग्दृष्टि जीवो निःशंक होय छे तेथी निर्भय होय छे; अने कारण के सप्त भयथी रहित होय छे तेथी निःशंक होय छे (—अडोल होय छे).

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२२९॥

जे कर्मबंधनमोहकर्ता पाद चारे छेदतो,
चिन्मूर्ति ते शंकारहित समकितदृष्टि जाणवो. २२९.

अर्थ :—जे *चेतयिता, कर्मबंध संबंधी मोह करनारा (अर्थात् जीव निश्चयथी कर्म वडे बंधायो छे एवो भ्रम करनारा) मिथ्यात्वादि भावोरूप चारे पायाने छेदे छे, ते निःशंक सम्यग्दृष्टि जाणवो.

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२३०॥

जे कर्मफळ ने सर्व धर्म तणी न कांक्षा राखतो,
चिन्मूर्ति ते कांक्षारहित समकितदृष्टि जाणवो. २३०.

अर्थ :—जे चेतयिता कर्मोनां फळो प्रत्ये तथा सर्व धर्मो प्रत्ये कांक्षा करतो नथी ते निष्कांक्ष सम्यग्दृष्टि जाणवो.

जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२३१॥

★ चेतयिता = चेतनार; जाणनार—देखनार; आत्मा.

सौ कोई धर्म विषे जुगुप्साभाव जे नहि धारतो,
चिन्मूर्ति निर्विचिकित्स समकितदृष्टि निश्चय जाणवो. २३१.

अर्थ :—जे चेतयिता बधाय धर्मो (वस्तुना स्वभावो) प्रत्ये जुगुप्सा (ग्लानि) करतो नथी ते निश्चयथी निर्विचिकित्स (—विचिकित्सादोष रहित) सम्यग्दृष्टि जाणवो.

जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२३२॥

संमूढ नहि जे सर्व भावे,-सत्यदृष्टि धारतो,
ते मूढदृष्टिरहित समकितदृष्टि निश्चय जाणवो. २३२.

अर्थ :—जे चेतयिता सर्व भावोमां अमूढ छे—यथार्थ दृष्टिवाळो छे, ते खरेखर अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि जाणवो.

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२३३॥

जे सिद्धभक्तिसहित छे, उपगूहक छे सौ धर्मनो,
चिन्मूर्ति ते उपगूहनकर समकितदृष्टि जाणवो. २३३.

अर्थ :—जे (चेतयिता) सिद्धनी (शुद्धात्मानी) भक्ति सहित छे अने पर वस्तुना सर्व धर्मोने गोपवनार छे (अर्थात् रागादि परभावोमां जोडातो नथी) ते उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि जाणवो.

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२३४॥

उन्मार्गगमने स्वात्मने पण मार्गमां जे स्थापतो,
चिन्मूर्ति ते स्थितिकरणयुत समकितदृष्टि जाणवो. २३४.

अर्थ :—जे चेतयिता उन्मार्गे जता पोताना आत्माने पण मार्गमां स्थापे छे, ते स्थितिकरणयुक्त (स्थितिकरणगुण सहित) सम्यग्दृष्टि जाणवो.

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२३५॥

जे मोक्षमार्गे 'साधु'त्रयनुं वत्सलत्व करे अहो!
चिन्मूर्ति ते वात्सल्ययुत समकितदृष्टि जाणवो. २३५.

अर्थ:—जे (चेतयिता) मोक्षमार्गमां रहेला सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूपी त्रण साधको–साधनो प्रत्ये (अथवा व्यवहारे आचार्य, उपाध्याय अने मुनि–अे त्रण साधुओ प्रत्ये) वात्सल्य करे छे, ते वत्सलभावयुक्त (वत्सलभाव सहित) सम्यग्दृष्टि जाणवो.

विज्ञारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥२३६॥

चिन्मूर्ति मन-रथपंथमां विद्यारथारूढ घूमतो,
ते जिनज्ञानप्रभावकर समकितदृष्टि जाणवो. २३६.

अर्थ:—जे चेतयिता विद्यारूपी रथमां आरूढ थयो थको (—चड्यो थको) मनरूपी रथ-पंथमां (अर्थात् ज्ञानरूपी जे रथने चालवानो मार्ग तेमां) भ्रमण करे छे, ते जिनेश्वरना ज्ञाननी प्रभावना करनारो समग्दृष्टि जाणवो.

(७) बंधनुं स्वरूप

जीवने रागद्वेषथी बंध थाय छे; माटे बंध छोडवा लायक छे,
ते बतावनारुं स्वरूप

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥२४७॥

जे मानतो–हुं मारुं ने पर जीव मारे मुजने,
ते मूढ छे, अज्ञानी छे, विपरीत अेथी ज्ञानी छे. २४७.

अर्थ:—जे अेम माने छे के 'हुं पर जीवोने मारुं छुं (-हणुं छुं)

अने पर जीवो मने मारे छे', ते मूढ (–मोही) छे, अज्ञानी छे, अने आनाथी विपरीत (अर्थात् आवुं नथी मानतो) ते ज्ञानी छे.

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदएण चेव खलु ।
तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण दु मिच्छा ॥२५८॥

वळी नव मरे, नव दुखी बने, ते कर्मना उदये खरे,
'में नव हण्यो, नव दुःखी कर्यो'–तुज मत शुं नहि मिथ्या खरे ?

अर्थ :–वळी जे नथी मरतो अने नथी दुःखी थतो ते पण खरेखर कर्मना उदयथी ज थाय छे; तेथी 'में न मार्यो, में न दुःखी कर्यो' एवो तारो अभिप्राय शुं खरेखर मिथ्या नथी ?

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति ।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं ॥२५९॥

आ बुद्धि जे तुज–'दुःखित तेम सुखी करुं छुं जीवने',
ते मूढ मति तारी अरे! शुभ-अशुभ बांधे कर्मने. २५९.

अर्थ :–तारी जे आ बुद्धि छे के हुं जीवोने दुःखी–सुखी करुं छुं, ते आ तारी मूढ बुद्धि ज (मोहस्वरूप बुद्धि ज) शुभाशुभ कर्मने बांधे छे.

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥२६२॥

मारो–न मारो जीवने, छे बंध अध्यवसानथी,
–आ जीव केरा बंधनो संक्षेप निश्चयनय थकी. २६२.

अर्थ :–जीवोने मारो अथवा न मारो—कर्मबंध अध्यवसानथी ज थाय छे. आ, निश्चयनये, जीवोना बंधनो संक्षेप छे.

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि ।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं ॥२६७॥

सौ जीव अध्यवसानकारण कर्मथी बंधाय ज्यां
ने मोक्षमार्गे स्थित जीवो मुकाय, तुं शुं करे भला? २६७.

अर्थ :—हे भाई! जो खरेखर अध्यवसानना निमित्ते जीवो कर्मथी बंधाय छे अने मोक्षमार्गमां स्थित मुकाय छे, तो तुं शुं करे छे? (तारो तो बांधवा—छोडवानो अभिप्राय विफळ गयो.)

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए ।
देवमणुए य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ॥२६८॥
धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च ।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥२६९॥

तिर्यंच, नारक, देव, मानव, पुण्य—पाप विविध जे,
ते सर्वरूप निजने करे छे जीव अध्यवसानथी. २६८.
वळी अेम धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, लोक-अलोक जे,
ते सर्वरूप निजने करे छे जीव अध्यवसानथी. २६९.

अर्थ :—जीव अध्यवसानथी तिर्यंच, नारक, देव अने मनुष्य अे सर्व पर्यायो, तथा अनेक प्रकारनां पुण्य अने पाप—अे बधारूप पोताने करे छे. वळी तेवी रीते जीव अध्यवसानथी धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, अने लोक-अलोक—अे बधारूप पोताने करे छे.

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥२७०॥

अे आदि अध्यवसान विधविध वर्ततां नहि जेमने,
ते मुनिवरो लेपाय नहि शुभ के अशुभ कर्मो वडे. २७०.

अर्थ :—आ (पूर्वे कहेलां) तथा आवा बीजा पण अध्यवसान जेमने नथी, ते मुनिओ अशुभ के शुभ कर्मथी लेपाता नथी.

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणएण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥२७२॥

व्यवहारनय अे रीत जाण निषिद्ध निश्चयनय थकी;
निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाणनी. २७२.

अर्थ :—अे रीते (पूर्वोक्त रीते) (पराश्रित अेवो) व्यवहारनय *निश्चयनय वडे निषिद्ध जाण; निश्चयनयने आश्रित मुनिओ निर्वाणने* पामे छे.

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥२७३॥

जिनवरकहेलां व्रत, समिति, गुप्ति, वळी तप-शीलने
करतां छतांय अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि छे. २७३.

अर्थ :—जिनवरोअे कहेलां व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप करतां छतां पण अभव्य जीव अज्ञानी अने मिथ्यादृष्टि छे.

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥२७७॥

मुज आत्म निश्चय ज्ञान छे, मुज आत्म दर्शन-चरित छे,
मुज आत्म प्रत्याख्यान ने मुज आत्म संवर-योग छे. २७७.

अर्थ :—निश्चयथी मारो आत्मा ज ज्ञान छे, मारो आत्मा ज दर्शन अने चारित्र छे, मारो आत्मा ज प्रत्याख्यान छे, मारो आत्मा ज संवर अने योग (—समाधि, ध्यान) छे.

(८) मोक्षनुं स्वरूप

जीवनी संपूर्ण पवित्रता बतावनारुं स्वरूप

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि ॥२६३॥

बंधो तणो जाणी स्वभाव, स्वभाव जाणी आत्मनो,
जे बंध मांही विरक्त थाये, कर्ममोक्ष करे अहो! २६३.

अर्थ :–बंधोना स्वभावने अने आत्माना स्वभावने जाणीने बंधो प्रत्ये जे विरक्त थाय छे, ते कर्मोथी मुकाय छे.

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥२६४॥

जीव बंध बन्ने, नियत निज निज लक्षणे छेदाय छे;
प्रज्ञाछीणी थकी छेदतां बन्ने जुदा पडी जाय छे. २६४.

अर्थ :–जीव तथा बंध नियत स्वलक्षणोथी (पोतपोतानां निश्चित लक्षणोथी) छेदाय छे; प्रज्ञारूपी छीणी वडे छेदवामां आवतां तेओ नानापणाने पामे छे अर्थात् जुदा पडी जाय छे.

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य धेत्तव्वो ॥२६५॥

जीव बंध ज्यां छेदाय ओ रीत नियत निज निज लक्षणे,
त्यां छोडवो ओ बंधने, जीव ग्रहण करवो शुद्धने. २६५.

अर्थ :–ओ रीते जीव अने बंध तेमनां निश्चित स्वलक्षणोथी छेदाय छे. त्यां, बंधने छेदवो अर्थात् छोडवो अने शुद्ध आत्माने ग्रहण करवो.

जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदि भमदि ।
ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ ॥३०२॥

एवम्हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा ।
जइ पुण णिरावराहो णिस्संकोहं ण बज्झामि ॥३०३॥

अपराध जे करतो नथी, निःशंक लोक विषे फरे,
'बंधाउं हुं' एवी कदी चिंता न थाये तेहने. ३०२.
त्यम आतमा अपराधी 'हुं बंधाउं' एम सशंक छे,
ने निरपराधी जीव 'नहि बंधाउं' एम निःशंक छे. ३०३.

अर्थः—जे पुरुष अपराध करतो नथी ते लोकमां निःशंक फरे छे, कारण के तेने बंधावानी चिंता कदापि ऊपजती नथी. एवी रीते अपराधी आत्मा 'हुं अपराधी छुं तेथी हुं बंधाईश' एम शंकित होय छे, अने जो निरपराधी (आत्मा) होय तो 'हुं नहि बंधाउं' एम निःशंक होय छे.

*

(६) सर्वविशुद्धज्ञाननुं स्वरूप

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

ज्यम नेत्र, तेम ज ज्ञान नथी कारक, नथी वेदक अरे !
जाणे ज कर्मोदय, निरजरा, बंध तेम ज मोक्षने. ३२०.

अर्थः—जेम नेत्र (दृश्य पदार्थोने करतुं–भोगवतुं नथी, देखे ज छे), तेम ज्ञान अकारक तथा अवेदक छे, अने बंध, मोक्ष, कर्मोदय तथा निर्जराने जाणे ज छे.

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति अविदिदत्था ।
जाणंति णिच्छएण दु ण य मह परमाणुमित्तमवि किंचि ॥३२४॥

व्यवहारमूढ अतत्त्वविद् परद्रव्यने 'मारुं' कहे,
'परमाणुमात्र न मारुं', ज्ञानी जाणता निश्चय वडे. ३२४.

अर्थ :–जेमणे पदार्थनुं स्वरूप जाण्युं नथी एवा पुरुषो व्यवहारनां वचनोने ग्रहीने 'परद्रव्य मारुं छे' एम कहे छे, परंतु ज्ञानीओ निश्चय वडे जाणे छे के 'कोई परमाणुमात्र पण मारुं नथी'.

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं ।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ।।३८३।।
कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्सं ।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवदि चेदा ।।३८४।।
जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेददि सो खलु आलोयणं चेदा ।।३८५।।
णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पडिक्कमदि जो य ।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा ।।३८६।।

शुभ ने अशुभ अनेकविध पूर्वे करेलुं कर्म जे,
तेथी निवर्ते आत्मने, ते आतमा प्रतिक्रमण छे; ३८३.
शुभ ने अशुभ भावि करम जे भावमां बंधाय छे,
तेथी निवर्तन जे करे, ते आतमा पचखाण छे; ३८४.
शुभ ने अशुभ अनेकविध छे वर्तमाने उदित जे,
ते दोषने जे चेततो, ते जीव आलोचना खरे. ३८५.
पचखाण नित्य करे अने प्रतिक्रमण जे नित्ये करे,
नित्ये करे आलोचना, ते आतमा चारित्र छे. ३८६.

अर्थ :–पूर्वे करेलुं जे अनेक प्रकारना विस्तारवाळुं (ज्ञानावरणीयादि) शुभाशुभ कर्म तेनाथी जे आत्मा पोताने *निवर्तावे छे, ते आत्मा प्रतिक्रमण छे.

★ निवर्तावयुं = पाछा वाळवुं; अटकाववुं; दूर राखवुं.

भविष्य काळनुं जे शुभ-अशुभ कर्म ते जे भावमां बंधाय छे ते भावथी जे आत्मा निवर्ते छे, ते आत्मा प्रत्याख्यान छे.

वर्तमान काळे उदयमां आवेलुं जे अनेक प्रकारना विस्तारवाळुं शुभ-अशुभ कर्म ते दोषने जे आत्मा चेते छे—अनुभवे छे—ज्ञाताभावे जाणी ले छे (अर्थात् तेनुं स्वामित्व—कर्तापणुं छोडे छे), ते आत्मा खरेखर आलोचना छे.

जे सदा प्रत्याख्यान करे छे, सदा प्रतिक्रमण करे छे अने सदा आलोचना करे छे, ते आत्मा खरेखर चारित्र छे.

ण वि सक्कदि घेत्तुं जं ण विमोत्तुं जं च जं परद्रव्वं ।
सो को वि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वा वि ॥४०६॥

जे द्रव्य छे पर तेहने न ग्रही, न छोडी शकाय छे,
अेवो ज तेनो गुण को प्रायोगी ने वैस्रसिक छे. ४०६.

अर्थ :—जे परद्रव्य छे ते ग्रही शकातुं नथी तथा छोडी शकातुं नथी, अेवो ज कोई तेनो (—आत्मानो) [1]प्रायोगिक तेम ज [2]वैस्रसिक गुण छे.

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥४१२॥

तुं स्थाप निजने मोक्षपंथे, ध्या, अनुभव तेहने;
तेमां ज नित्य विहार कर, नहि विहर परद्रव्यो विषे. ४१२.

अर्थ :—(हे भव्य!) तुं मोक्षमार्गमां पोताना आत्माने स्थाप, तेनुं ज ध्यान कर, तेने ज चेत—अनुभव अने तेमां ज निरंतर विहार कर; अन्य द्रव्योमां विहार न कर.

*

१ प्रायोगिक = विकारी   २ वैस्रसिक = शुद्ध

पाठ ८ मो

मोक्षमार्गनुं बीजुं रत्न सम्यग्ज्ञान छे, तेथी हवे तेमां लागेला दोषनुं प्रतिक्रमण कहेवामां आवे छे.

मइसुइओहिमणपज्ञयं तहा केवलं च पंचभेयं।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मि दुक्कडं हुज्ञ ॥२७॥★

अर्थ :—हे भगवान! में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अने केवळज्ञान ए पांच प्रकारनां ज्ञानोमांथी जे कोई ज्ञाननी विराधना करी होय—आशातना करी होय ते संबंधी मारां सर्वे पाप मिथ्या थाओ.

पाठ ९ मो

बार प्रकारनां व्रतनुं स्वरूप

(१) हिसानुं स्वरूप

[१]आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥४२॥

अर्थ :—आत्माना शुद्धोपयोगरूप परिणामोनो घातवावाळो भाव ते संपूर्ण हिंसा छे, असत्य वचनादिक भेदो मात्र शिष्योने समजाववा माटे उदाहरणरूप कहेल छे.

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥४३॥

अर्थ :—खरी रीते कषाय सहित योगोथी जे द्रव्य अने भावरूप

★ पं. नंदलालजीकृत श्रावक प्रतिक्रमण, पा. ६६

१. सम्यग्दृष्टि श्रावकने आवां शुभभावरूप व्रत होय छे, मिथ्यादृष्टिने होतां नथी, केम के तेनां व्रतने बाळव्रत कह्यां छे, तेथी तेने साचां व्रत होतां नथी.

२. पुरुषार्थसिद्धि-उपायमांथी.

बे प्रकारना प्राणोनो घात करवो ते प्रसिद्ध रीते नक्की थयेली हिंसा छे.

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥४४॥

अर्थ :–खरेखर रागादि भावोनुं प्रगट न् थवुं ते अहिंसा छे अने ते रागादि भावोनी उत्पत्ति थवी ते हिंसा छे एवुं जैनशास्त्रनुं टूंकुं रहस्य छे.

(२) **असत्यनुं स्वरूप**

यदिदं प्रमादयोगादसदभिधानं विधीयते किमपि ।
तदनृतमपि विज्ञेयं तद्भेदाः सन्ति चत्वारः ॥९१॥

अर्थ :–प्रमाद--कषायमां जोडावाथी जे कंई पण असत् कथन करवामां आवे ते खरी रीते जूठुं जाणवुं जोइअे.

(३) **चोरीनुं स्वरूप**

अवितीर्णस्य ग्रहणं परिग्रहस्य प्रमत्तयोगाद्यत् ।
तत्प्रत्येयं स्तेयं सैव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात् ॥१०२॥

अर्थ :–जे प्रमाद-कषायमां जोडावाथी दीधा विना सोनुं, वस्त्र वगेरे परिग्रहने ग्रहवो तेने चोरी जाणवी, अने ते वधनुं कारण होवाथी हिंसा छे.

(४) **अब्रह्मचर्यनुं स्वरूप**

यद्वेदरागयोगान्मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म ।
अवतरति तत्र हिंसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात् ॥१०७॥

अर्थ :–पुरुषवेद, स्त्रीवेद के नपुंसकवेदरूप रागमां जोडावाथी जेने मैथुन कहेवामां आवे छे ते अब्रह्मचर्य छे, अने तेमां सर्वत्र प्राणीनो वध होवाथी हिंसा थाय छे.

(५) परिग्रहनुं स्वरूप

या मूर्च्छा नामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः ।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्च्छा तु ममत्वपरिणामः ॥१११॥

अर्थः–जे मूर्च्छा छे तेने ज परिग्रह जाणवो; अने मोहनीय कर्मना उदयमां जोडावाथी उत्पन्न थता ममत्वरूप परिणाम ते मूर्च्छा छे.

उपरनां जे पांच अव्रत छे तेमनो त्याग ते व्रत छे. श्रावकोने एकदेश त्याग होय छे अने ते अणुव्रत छे. तेनी प्रतिज्ञा श्रावके करवी.

(६) दिग्व्रतनुं स्वरूप

प्रविधाय सुप्रसिद्धैर्मर्यादां सर्वतोप्यभिज्ञानैः ।
प्राच्यादिभ्योः दिग्भ्यः कर्तव्या विरतिरविचलिता ॥१३७॥

अर्थः–समस्त दिशाओमां सुप्रसिद्ध गाम, नदी, पर्वतादि जुदां जुदां स्थानो सुधीनी मर्यादा करीने पूर्व वगेरे दिशाओमां मर्यादा बहार गमन नहि करवानी प्रतिज्ञा करवी.

(७) देशावगाशिक (देश) व्रतनुं स्वरूप

तत्रापि च परिमाणं ग्रामापणभवनपाटकादीनाम् ।
प्रविधाय नियतकालं करणीयं विरमणं देशात् ॥१३८॥

अर्थः–दिग्व्रतमां बांधेली मर्यादामांथी पण गाम, बजार, जाणीतुं मकान, शेरी वगेरेनुं परिमाण करीने मर्यादावाळा क्षेत्रनी बहार जवानो मुकरर करेल समय सुधी त्याग करवो जोईए.

(८) अनर्थदंड (त्याग) व्रतनुं स्वरूप

पापर्द्धिजयपराजयसङ्गरपरदारगमनचौर्याद्याः ।
न कदाचनापि चिन्त्याः पापफलं केवलं यस्मात् ॥१४१॥

अर्थः–शिकार, जय, पराजय, युद्ध, परस्त्रीगमन, चोरी

आदिकनुं कोई पण वखते चिंतवन नहि करवुं, केम के ते माठां ध्यानोनुं फळ केवळ पाप ज छे.

(९) **सामायिकव्रतनुं स्वरूप**

रागद्वेषत्यागान्निखिलद्रव्येषु साम्यमवलम्ब्य ।
तत्त्वोपलब्धिमूलं बहुशः सामायिकं कार्यम् ॥१४८॥

अर्थः—समस्त पदार्थो प्रत्ये राग--द्वेषनो त्याग करीने समभावने अंगीकार करी आत्मतत्त्वनी स्थिरतानुं मूळ कारण एवुं सामायिक वारंवार करवुं.

(१०) **पौषधव्रतनुं स्वरूप**

मुक्तसमस्तारम्भः प्रोषधदिनपूर्ववासरस्यार्द्धे ।
उपवासं गृह्णीयान्ममत्वमपहाय देहादौ ॥१५२॥
श्रित्वा विविक्तवसतिं समस्तसावद्ययोगमपनीय ।
सर्वेन्द्रियार्थविरतः कायमनोवचनगुप्तिभिस्तिष्ठेत् ॥१५३॥

अर्थः—समस्त आरंभथी मुक्त थई शरीरादिकमां आत्मबुद्धिने त्यागीने पौषधना दिवसना आगला दिवसना बपोरथी उपवास करवो अने पौषधनो दिवस एकान्त स्थानमां रही संपूर्ण सावद्ययोगने छोडी, सर्वे इन्द्रियोना विषयोथी विरक्त थई, त्रण गुप्तिमां स्थिर थई धर्मध्यानमां व्यतीत करवो.

(११) **भोग–उपभोगपरिमाणव्रतनुं स्वरूप**

भोगोपभोगमूला विरताविरतस्य नान्यतो हिंसा ।
अधिगम्य वस्तुतत्त्वं स्वशक्तिमपि तावपि त्याज्यौ ॥१६१॥

अर्थः—श्रावकने भोग--उपभोगना निमित्तथी हिंसा थाय छे, माटे वस्तुना स्वरूपने जाणीने पोतानी शक्ति अनुसार भोग--उपभोगने छोडवा जोइए.

(१२) अतिथिसंविभागव्रतनुं स्वरूप

विधिना दातृगुणवता द्रव्यविशेषस्य जातरूपाय ।
स्वपरानुग्रहहेतोः कर्तव्योऽवश्यमतिथये भागः ॥१६७॥

अर्थः—दाताना गुण धरावनार गृहस्थे निर्ग्रंथ अतिथिने (निर्ग्रंथ मुनिने) पोताना अने परना उपकारना हेतुथी देवा लायक़ वस्तु विधिपूर्वक देवी ओ अवश्य कर्तव्य छे.

पाठ १०मो

संलेखनानुं स्वरूप

[१]मरणान्तेऽवश्यमहं विधिना सल्लेखनां करिष्यामि ।
इति भावनापरिणतोऽनागतमपि पालयेदिदं शीलम् ॥१७६॥
मरणेऽवश्यं भाविनि कषायसंल्लेखनातनूकरणमात्रे ।
रागादिमन्तरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मघातोऽस्ति ॥१७७॥

अर्थः—मरणकाळे हुं अवश्य विधिपूर्वक समाधिमरण करीश ओवा प्रकारनी भावनारूप परिणति करीने मरणकाळ प्राप्त थया पहेलां ज ओ संलेखना व्रत प्राप्त करवुं जोईओ.

मरण तो अवश्य थवानुं ज होवाथी कषायने सम्यक् प्रकारे पातळा पाडवाना व्यापारमां प्रवर्तमान पुरुषने रागादि भावोना असद्भावने लीधे आत्मघात नथी.

पाठ ११मो

मिथ्यात्वनुं स्वरूप

[२]प्रश्न :--मिथ्यात्व कोने कहे छे?

---

१. पुरुषार्थसिद्धि–उपायमांथी

२. श्री जैनसिद्धांतप्रवेशिकाना आधारे

उत्तर :—मिथ्यात्वप्रकृतिना उदयमां जोडावाथी कुदेवमां देवबुद्धि, कुगुरुमां गुरुबुद्धि, कुशास्त्रमां शास्त्रबुद्धि, अतत्त्वमां तत्त्वबुद्धि, अधर्म (कुधर्म)मां धर्मबुद्धि इत्यादि विपरीताभिनिवेश(-अभिप्राय)रूप जीवना परिणामने मिथ्यात्व कहे छे.

मिथ्यात्वना पांच भेद छे--(१) अेकांतिक मिथ्यात्व, (२) विपरीत मिथ्यात्व, (३) सांशयिक मिथ्यात्व, (४) अज्ञानिक मिथ्यात्व अने (५) वैनयिक मिथ्यात्व.

अे पांच भेदोनुं स्वरूप--

(१) पदार्थनुं स्वरूप अनेक धर्मोवाळुं होवा छतां तेने सर्वथा अेक ज धर्मवाळो मानवो ते अेकान्तिक मिथ्यात्व छे, जेम के--आत्माने सर्वथा क्षणिक अथवा सर्वथा नित्य मानवो ते.

(२) द्रव्यनुं स्वरूप जे प्रकारे छे तेथी ऊंधी मान्यतारूप ऊंधी रुचिने विपरीत मिथ्यात्व कहे छे, जेम के--शरीरने आत्मा माने, सग्रंथने निर्ग्रंथ माने, केवळीना स्वरूपने विपरीतपणे माने.

(३) आत्मा पोताना कार्यनो कर्ता थतो हशे के परवस्तुना कार्यनो कर्ता थतो हशे ? अे वगेरे प्रकारे संशय रहेवो तेने सांशयिक मिथ्यात्व कहे छे.

(४) ज्यां हिताहित विवेकनो कांई पण सद्भाव न होय तेने अज्ञानिक मिथ्यात्व कहे छे, जेम के--पशुवधने अथवा पापने धर्म समजवो.

(५) समस्त देव अने समस्त मतोमां समदर्शीपणुं (सरखापणुं) मानवुं तेने वैनयिक मिथ्यात्व कहे छे.

उपर प्रमाणे मिथ्यात्वनुं स्वरूप जाणीने सर्व जीवोअे मिथ्यात्व छोडवुं जोईअे.

*

पाठ १२ मो

चार मंगल

चत्तारि मंगलं--अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं.

चत्तारि लोगुत्तमा--अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो.

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि--अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि.

अर्थ :--मंगलभूत पदार्थो चार ज छे--अरिहंतो, सिद्ध-भगवंतो, साधुओ अने केवलिकथित धर्म.

लोकमां उत्तम पण चार ज छे--अरिहंत देवो, सिद्ध भगवानो, साधुओ अने केवलिप्ररूपित धर्म; तेथी ज हुं ओ चार--अरिहंत प्रभुओ, सिद्ध परमात्माओ, साधुओ अने केवलिप्ररूपित धर्मनुं शरण अंगीकार करुं छुं.

पाठ १३ मो

क्षमापना *(खामणा)

हे भगवान! हुं बहु भूली गयो,
में तमारां अमूल्य वचनने
लक्षमां लीधां नहीं.
तमारां कहेलां अनुपम तत्त्वनो
में विचार कर्यो नहीं.
तमारां प्रणीत करेलां
उत्तम शीलने सेव्युं नहीं.

★ श्रीमद् राजचंद्रकृत मोक्षमाळामांथी

तमारां कहेलां दया, शांति,
क्षमा अने पवित्रता
में ओळख्यां नहीं.
हे भगवन्! हुं भूल्यो,
आथड्यो, रझळयो
अने अनंत संसारनी
विटम्बनामां पड्यो छुं.
हुं पापी छुं. हुं बहु मदोन्मत्त
अने कर्मरजथी करीने मलिन छुं.
हे परमात्मा! तमारां कहेलां तत्त्व विना
मारो मोक्ष नथी.
हुं निरंतर प्रपंचमां पड्यो छुं.
अज्ञानथी अंध थयो छुं,
मारामां विवेकशक्ति नथी
अने हुं मूढ छुं, निराश्रित छुं, अनाथ छुं.
निरागी परमात्मा! हवे हुं तमारुं,
तमारा धर्मनुं अने तमारा मुनिनुं शरण ग्रहुं छुं.
मारा अपराध क्षय थई
हुं ते सर्व पापथी मुक्त थउं,
ओ मारी अभिलाषा छे.
आगळ करेलां पापोनो हुं हवे
पश्चात्ताप करुं छुं.
जेम जेम हुं सूक्ष्म विचारथी ऊंडो ऊतरुं छुं
तेम तेम तमारा तत्त्वना चमत्कारो
मारा स्वरूपनो प्रकाश करे छे.
तमे निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप,
सहजानंदी, अनंतज्ञानी,

अनंतदर्शी अने त्रैलोक्यप्रकाशक छो.
हुं मात्र मारा हितने अर्थे
तमारी साक्षीअे क्षमा चाहुं छुं,
अेक पळ पण तमारां कहेलां
तत्त्वनी शंका न थाय,
तमारा कहेला रस्तामां अहोरात्र हुं रहुं,
अे ज मारी आकांक्षा अने वृत्ति थाओ!
हे सर्वज्ञ भगवान! तमने हुं विशेष शुं कहुं?
तमाराथी कंई अजाण्युं नथी.
मात्र पश्चात्तापथी हुं कर्मजन्य
पापनी क्षमा इच्छुं छुं.

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

पाठ १४ मो

क्षमापना *चालु

श्री सीमंधरस्वामी, श्री युगमंधरस्वामी, श्री बाहुस्वामी, श्री सुबाहुस्वामी, श्री संजातकस्वामी, श्री स्वयंप्रभस्वामी, श्री वृषभाननस्वामी, श्री अनंतवीर्यस्वामी, श्री सूरप्रभस्वामी, श्री विशालकीर्तिस्वामी, श्री वज्रधरस्वामी, श्री चंद्राननस्वामी, श्री चंद्रबाहुस्वामी, श्री भुजंगमस्वामी, श्री इश्वरस्वामी, श्री नेमप्रभस्वामी, श्री वीरसेनस्वामी, श्री महाभद्रस्वामी, श्री देवयशस्वामी अने श्री अजितवीर्यस्वामी--अे नामना धारक, पांच मेरु संबंधी विदेहक्षेत्रमां वीस तीर्थंकर हाल बिराजमान छे तेमने मारा नमस्कार हो.

तेमना प्रत्ये तथा श्री अरिहंत, श्री सिद्धभगवान, श्री आचार्य महाराज, श्री उपाध्यायमहाराज तथा श्री निर्ग्रंथ मुनिराज ने अर्जिका प्रत्ये तथा श्रावक--श्राविका प्रत्ये, कोई पण जातना अविनय,

★ श्री मोक्षमार्गप्रकाशक वगेरेना आधारे

अशातना, अभक्ति, अपराध कर्यां होय तो ते खमावुं छुं.

चोरासी लाख जीवयोनिमांहे मारा जीवे जे कोई जीव हण्यो होय, हणाव्यो होय, हणतां प्रत्ये अनुमोद्यो होय तो ते सर्वे मारुं दुष्कृत्य मिथ्या थाओ.

पाठ १५ मो

लोगस्ससूत्र

चोवीश तीर्थंकरनी स्तुति कायोत्सर्गरूपे कहेवामां आवे छे.

(नमस्कार मंत्र बोलवो)

(अनुष्टुप छंद)

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे;
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली. १.

(आर्या छंद)

उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च;
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे. २.
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च;
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि. ३.
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च;
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च. ४.
अेवं मअे अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा;
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु. ५.
कित्तियवंदियमहिया, जे अे लोगस्स उत्तमा सिद्धा;
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु. ६.
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा;
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु. ७.

अर्थ :–(तीर्थंकरोना स्तवननी प्रतिज्ञा :–) स्वर्ग, मृत्यु अने पाताल—त्रणे जगतमां धर्मना प्रकाशको, धर्मतीर्थना स्थापको अने राग-द्वेष आदि अंतरंग शत्रुओ पर विजेताओ एवा चोवीश केवलज्ञानी तीर्थंकरो अने अन्य तीर्थंकरोनुं हुं स्तवन करीश—स्तुति करीश.

(स्तवन :–) श्री वृषभनाथ, श्री अजितनाथ, श्री संभवनाथ, श्री अभिनंदन, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभ, श्री सुपार्श्वनाथ, श्री चंद्रप्रभ, श्री पुष्पदंत अथवा श्री सुविधिनाथ, श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयांसनाथ, श्री वासुपूज्य, श्री विमलनाथ, श्री अनंतनाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शान्तिनाथ, श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री मुनिसुव्रत, श्री नमिनाथ, श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्श्वनाथ, श्री वर्द्धमानस्वामी--आ चोवीस जिनेश्वरोनी हुं स्तुति करुं छुं.

(भगवानने प्रार्थना :–) जेओनी हुं स्तुति करुं छुं, जेओ [1]रजमल रहित छे, जेओ जरा–मरण बन्नेथी मुक्त छे अने जेओ तीर्थना प्रवर्तक छे ते चोवीश जिनेश्वरो अने सामान्य केवलज्ञानीओ पण मारा उपर प्रसन्न थाओ.

जेओनुं कीर्तन, वंदन अने पूजन नरेन्द्रो अने देवेन्द्रोए पण कर्युं छे, जेओ संपूर्ण लोकमां उत्तम छे अने जेओए सिद्धि प्राप्त करी छे ते भगवानो मने भावआरोग्य (राग–द्वेष रहित दशा) माटे [2]बोधि अने [3]समाधिना उत्तम वर आपो.

जेओ सर्व चंद्रोथी विशेष निर्मळ छे, सर्व सूर्योथी अधिक प्रकाशमान छे अने स्वयंभूरमण नामक महासमुद्रथी वधारे गंभीर छे ते सिद्धभगवंतो मने सिद्धि आपो.

(नमस्कार मंत्र बोली कायोत्सर्ग पाळवो)

---

१. रज = द्रव्यकर्म, मल = भावकर्म.

२. बोधि = नहि प्राप्त थयेल एवां सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रनी प्राप्तिने लाभ.

३. समाधि = प्राप्त थयेल सम्यग्दर्शनादिनुं निर्विघ्नतापूर्वक वहन.

पाठ १६ मो

प्रत्याख्यान

दिवसचरिमं पच्चक्खामि[1]

(सूरे उग्गअे नमोक्कारसहिअं पच्चक्खामि–जो नोकारसी करवी होय तो.)

चउव्विहं पि आहारं—असणं, पाणं, खाईमं, साईमं, अन्नत्थणा-भोगेणं, सहस्सागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वित्तियागारेणं वोसिरामि.*

अर्थ :–धार्या प्रमाणे नमस्कार मंत्र भणुं त्यां सुधी हुं चार प्रकारना आहार–भोजन, पान, [1]खादिम अने [2]स्वादिमनो त्याग करुं छुं; आ आहारोनो त्याग चार [3]आगारो राखी करवामां आवे छे. ते आ प्रमाणे : [4]अनाभोग, [5]सहसाकार, [6]महत्तराकार, [7]सर्वसमाधिप्रत्याकार.

※

पाठ १७ मो

नमोत्थुणं

स्तुतिमंगल अथवा नमस्कारकीर्तन

नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवरपुंडरियाणं, पुरिस–वर–गंध–हत्थीणं; लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोग–हिआणं, लोग–

---

१ बीजाने पचखाण करावती वखते 'वोसिराई' शब्द बोलवो.

२ बीजाने पचखाण करावती वखते 'पच्चक्खाई' शब्द कहेवो.

३. मेवो, फळ. २. मुखवास. ३. छूट ४. बिलकुल याद न रहेवुं ते. ५. अकस्मात. ६ विशेष निर्जरादि खास कारणमां गुरुनी आज्ञा मेळवी निश्चित समय पहेलां पचखाण पारवुं ते. ७. सर्व प्रकारनी समाधि न रहेवी ते.

पइवाणं, लोग–पज्ञोअगराणं, अभय–दयाणं, चक्खु–दयाणं, मग्ग–दयाणं, सरण–दयाणं, जीव–दयाणं, बोहिदयाणं, धम्म–दयाणं, धम्म–देसियाणं, धम्म–नायगाणं, धम्म–सारहीणं, धम्म-वरचाउरंत–चक्कवटीणं, दीवोताणं, सरणगईपइट्ठा, अपडिहयवर–नाणदंसणधराणं, विअट्ट छउमाणं, जिणाणं, जावयाणं, तिन्नाणं, तारयाणं, बुद्धाणं, बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीणं, सिवमलय-मरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणराविति सिद्धिगई नामधेयं, ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं, जिअभयाणं.

अर्थ :–अरिहंत भगवंतोने मारा नमस्कार हो, जे अरिहंत भगवान अर्थात् ज्ञानवान छे, द्वादशांगी धर्मनी आदि करनारा छे, तीर्थनी स्थापना करनारा छे, अन्यना उपदेश विना स्वयमेव बोधप्राप्त थयेला छे; सर्व पुरुषोमां उत्तम छे, पुरुषोमां सिंहसमान नीडर छे, पुरुषोमां पुंडरीक कमळ समान अलिप्त छे, पुरुषोमां प्रधान गंधहस्ति समान शक्तिशाळी छे. लोकमां उत्तम छे, लोकना नाथ छे, लोकना हितकारक छे, लोकमां दीवा समान प्रकाश करनारा छे, लोकमां अज्ञान अंधकारनो नाश करनारा छे; दुःखीओने अभयदान देनारा छे, अज्ञानथी अंध लोकोने ज्ञानरूप नेत्र देनारा छे, मार्गभ्रष्टने (मार्ग भूलेलाने) मार्ग देखाडनारा छे, शरणागतने शरण देनारा छे, संयमरूप जीवितना दाता छे, सम्यक्त्वनुं प्रदान करनारा छे, धर्महीनने धर्मदान करनारा छे, जिज्ञासुओने धर्मनो उपदेश करनारा छे, धर्मना नायक छे, धर्मना सारथि–संचालक छे, धर्ममां श्रेष्ठ छे तथा चक्रवर्ती समान चतुरन्त छे अर्थात् जेम चार दिशाओना विजय करवाना कारणे चक्रवर्ती चतुरन्त कहेवाय छे, तेम अरिहंत पण चार गतिओनो अंत करवाने कारणे चतुरन्त कहेवाय छे. भवसमुद्रमां डूबता जीवोने बेटसमान आधाररूप छे, कर्मशत्रुथी बचावनार छे, सन्मार्ग बतावनार होवाथी शरणरूप छे, दुःखी संसारी जीवोने आश्रयदाता होवाथी

आधाररूप छे, संसाररूप खाडामां पडता जीवोने टेकारूप छे, सर्व पदार्थोना स्वरूपने प्रकाशित करनारा श्रेष्ठ ज्ञान–दर्शन अर्थात् केवलज्ञान--केवलदर्शनने धारण करनारा छे, चार घाती कर्मरूप आवरणथी मुक्त छे, स्वयं राग–द्वेषने जीतनारा छे अने अन्योने पण राग–द्वेष जिताडनारा छे, स्वयं भवसमुद्रना पारने पहोंचेला छे अने अन्योने पण पार पहोंचाडनारा छे; स्वयं ज्ञान प्राप्त थयेल छे अने अन्योने पण ज्ञान प्राप्त करावनारा छे; स्वयं मुक्त छे अने अन्योने पण मुक्ति प्राप्त करावनारा छे; सर्वज्ञ छे, सर्वदर्शी छे, तेथी उपद्रवरहित, अचल, रोगरहित, अनंत, अक्षय, आकुळता–व्याकुळता रहित अने पुनरागमन रहित एवा मोक्षस्थानने पामेला छे.

सर्व प्रकारना भयोने जीतनारा जिनेश्वरोने नमस्कार हो.

इति प्रथम प्रतिक्रमण

*

स्वाध्याय ए परम तप छे

बारसविहम्मि य त्वे अब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे ।
ण वि अत्थि ण वि य होहिदि सजझायसमं त्वो कम्मं ॥६॥

(भगवती आराधना–शिक्षाधिकार)

अर्थ :—प्रवीण पुरुष जे श्री गणधरदेव तेमनाथी अवलोकन करवामां आवेलां जे बाह्य–अभ्यंतर बार प्रकारनां तप छे तेमां स्वाध्याय समान बीजुं तप कदी थयुं नथी, थशे नहि अने थतुं नथी.

*

बीजुं प्रतिक्रमण

संवत्सरीना दिवसे करवानुं प्रतिक्रमण

अथवा लघु प्रतिक्रमण

[श्री सद्गुरुदेवनी विनयपूर्वक आज्ञा लईने अथवा तेओश्री बिराजमान न होय तो श्री सीमंधर प्रभुनी आज्ञा लईने प्रतिक्रमण शरू करवुं.]

*

पाठ १ लो

देव–गुरु–धर्म मंगल

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

*

पाठ २ जो

दिव्यध्वनि नमस्कार

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः ॥

*

पाठ ३ जो ब्रह्मचर्य–महिमा

पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान;
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान.

(श्रीमद् राजचंद्रमांथी)

*

पाठ ४ थो सर्वज्ञनुं स्वरूप

त्रिकाळगोचर समस्त गुण–पर्यायो सहित संपूर्ण लोक अने अलोकने (छअे द्रव्योने) जे प्रत्यक्ष जाणे छे ते सर्वज्ञदेव छे. ३०२.

हे सर्वज्ञना अभाववादी! जो सर्वज्ञ न होय तो अतीन्द्रिय पदार्थोने (–इन्द्रियगोचर नथी अेवा पदार्थोने) कोण जाणे?

इन्द्रियज्ञान तो स्थूल पदार्थो के जे इन्द्रियोना संबंधरूप वर्तमान होय तेने जाणे छे, अने तेमना पण समस्त पर्यायोने ते जाणतुं नथी. ३०३. *(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामांथी)*

जे जाणतो अर्हंतने गुण, द्रव्य ने पर्ययपणे,
ते जीव जाणे आत्मने, तसु मोह पामे लय खरे. ८०.

जे अर्हंतने द्रव्यपणे, गुणपणे अने पर्यायपणे जाणे छे ते (पोताना) आत्माने जाणे छे अने तेनो मोह अवश्य लय पामे छे. *(श्री प्रवचनसार)*

*

पाठ ५ मो समयसारजी–स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी.

(अनुष्टुप)

कुंदकुंद रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या.

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस–भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजली भरी भरी;
अनादिनी मूर्च्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति.

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो.

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां, जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे.

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी.

*

पाठ ६ठ्ठो

श्री आत्मसिद्धिशास्त्रनां केटलांक पदो

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत. १.

वैराग्यादि सफळ तो, जो सह आतमज्ञान;
तेम ज आतमज्ञाननी, प्राप्ति तणां निदान. ६.

त्याग, विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान;
अटके त्याग विरागमां, तो भूले निज भान. ७.
सेवे सद्गुरु चरणने, त्यागी दई निज पक्ष;
पामे ते परमार्थने, निजपदनो ले लक्ष. ९.
सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो, समज्ये जिनस्वरूप. १२.
स्वछंद, मत आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष;
समकित तेने भाखियुं, कारण गणी प्रत्यक्ष. १७.
मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराय;
जातां सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय. १८.
लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं, ग्रह्युं व्रत अभिमान;
ग्रहे नहीं परमार्थने, लेवा लौकिक मान. २८.
अथवा निश्चय नय ग्रहे, मात्र शब्दनी मांय;
लोपे सद्व्यवहारने, साधनरहित थाय. २९.
ज्ञानदशा पामे नहीं, साधनदशा न कांई;
पामे तेनो संग जे, ते बूडे भवमांहि. ३०.
नहि कषाय उपशांतता, नहि अंतर वैराग्य;
सरळपणुं न मध्यस्थता, ए मतार्थी दुर्भाग्य. ३२.
अेक होय त्रण काळमां, परमारथनो पंथ;
प्रेरे ते परमार्थने, ते व्यवहार समंत. ३६.
कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष-अभिलाष;
भवे खेद, प्राणीदया, त्यां आत्मार्थनिवास. ३८.
भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देहसमान;
पण ते बन्ने भिन्न छे, प्रगट लक्षणे भान. ४९.
सर्व अवस्थाने विषे, न्यारो सदा जणाय;
प्रगटरूप चैतन्यमय, अे अेंधाण सदाय. ५४.

जड चेतननो भिन्न छे, केवळ प्रगट स्वभाव;
अेकपणुं पामे नहि, त्रणे काळ द्वय भाव. ५७.
जे संयोगो देखिये, ते ते अनुभव दृश्य;
ऊपजे नहि संयोगथी, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष. ६४.
जडथी चेतन ऊपजे, चेतनथी जड थाय;
अेवो अनुभव कोईने क्यारे कदी न थाय. ६५.
कोई संयोगोथी नहीं, जेनी उत्पत्ति थाय;
नाश न तेनो कोईमां, तेथी नित्य सदाय. ६६.
चेतन जो निजभानमां, कर्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहि निजभानमां, कर्ता कर्म-प्रभाव. ७८.
कर्मभाव अज्ञान छे, मोक्षभाव निजवास;
अंधकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञानप्रकाश. ९८.
जे जे कारण बंधना, तेह बंधनो पंथ;
ते कारण छेदक दशा, मोक्षपंथ भवअंत. ९९.
राग, द्वेष, अज्ञान अे, मुख्य कर्मनी ग्रंथ;
थाय निवृत्ति जेहथी, ते ज मोक्षनो पंथ. १००.
आत्मा सत् चैतन्यमय, सर्वाभास रहित;
जेथी केवळ पामिये, मोक्षपंथ ते रीत. १०१.
मत दर्शन आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष;
लहे शुद्ध समकित ते, जेमां भेद न पक्ष. ११०.
वर्ते निजस्वभावनो, अनुभव लक्ष प्रतीत;
वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित. १११.
वर्धमान समकित थई, टाळे मिथ्याभास;
उदय थाय चारित्रनो, वीतरागपद वास. ११२.
केवळ निजस्वभावनुं, अखंड वर्ते ज्ञान;
कहिये केवळज्ञान ते, देह छतां निर्वाण. ११३.

कोटि वर्षनुं स्वप्न पण, जाग्रत थतां शमाय;
तेम विभाव अनादिनो, ज्ञान थतां दूर थाय. ११४.
छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, अे ज धर्मनो मर्म. ११५.
अे ज धर्मथी मोक्ष छे, तुं छो मोक्षस्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तुं, अव्याबाध स्वरूप. ११६.
शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम. ११७.
मोक्ष कह्यो निजशुद्धता, ते पामे ते पंथ;
समजाव्यो संक्षेपमां, सकळ मार्ग निर्ग्रंथ. १२३.
आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजाण;
गुरुआज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान. १२६.
जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहि आत्मार्थ. १३०.
सर्व जीव छे सिद्धसम, जे समजे ते थाय;
सद्गुरुआज्ञा जिनदशा, निमित्त कारणमांय. १३५.
देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित. १४२.

पाठ ७ मो

श्री अमितगति–आचार्य विरचित सामायिक पाठनां केटलांक अवतरणो

(हरिगीत छंद)

+सौ प्राणी आ संसारनां, सन्मित्र मुज व्हालां थजो,
सद्गुणमां आनंद मानुं, मित्र के वेरी हजो;

\+ सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेसु जीवेसु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥ १ ॥

दुखिया प्रति करुणा अने दुश्मन प्रति मध्यस्थता,
शुभ भावना प्रभु चार आ, पामो हृदयमां स्थिरता.　　१.
अति ज्ञानवंत अनंत शक्ति, दोषहीन आ आत्म छे,
अे म्यानथी तरवार पेठे, शरीरथी विभिन्न छे;
हुं शरीरथी जुदो गणुं, अे ज्ञानबळ मुजने मळो,
ने भीषण जे अज्ञान मारुं नाथ! ते सत्वर टळो.　　२.
सुख–दुःखमां, अरि–मित्रमां, संयोग के वियोगमां,
रखडुं वने वा राजभुवने, राचतो सुखभोगमां;
मम सर्वकाळे सर्व जीवमां, आत्मवत् बुद्धि वधी,
तुं आपजे मुज मोह कापी, आ दशा करुणानिधि.　　३.
प्रमादथी प्रयाण करीने, विचरतां प्रभु अहीं तहीं,
अेकेन्द्रियादि जीवने, हणतां कदी डरतो नहीं;
छेदी विभेदी दुःख दई, में त्रास आप्यो तेमने,
करजो क्षमा मुज कर्म हिंसक, नाथ विनवुं आपने.　　५.
★मन मारुं दोषित थाय तो हुं दोष अतिक्रम जाणतो,
दोषित थतुं आचारमां तो दोष व्यतिक्रम मानतो;
विषयो तणी प्रवृत्तिमां हुं अतिचारी धारतो,
विषयो तणी आसक्तिमां हुं अनाचारी समजनो.　　६.
मुज वचन वाणी उच्चारमां, तलभार विनिमय थाय तो,
जो अर्थ मात्रा पद महीं, लवलेश वधघट होय तो;
यथार्थ वाणी भंगनो, दोषित प्रभु हुं आपनो,
आपी क्षमा मुजने बनावो, पात्र केवळ बोधनो.　　१०.

★ अर्थ :—मननी शुद्धिमां क्षति थवी, मनमां विकारभाव उत्पन्न थवो ते अतिक्रम छे; शीलव्रतनुं अर्थात् व्रतमय प्रतिज्ञानुं उल्लंधन करवानो भाव थवो ते व्यतिक्रम छे; विषयोमां वर्तवुं ते अतिचार छे; अने ते विषयोमां अतिशय आसक्त थई जवुं ते अनाचार छे.

[1]पाठ ८ मो

श्रावक–कर्तव्य

षट् आवश्यक कर्म

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥७॥

(पद्मनंदिपंचविंशतिका–उपासकसंस्कार)

अर्थ:–जिनेन्द्रदेवनी पूजा, निर्ग्रंथ गुरुओनी सेवा, स्वाध्याय, संयम, (योग्यतानुसार) तप अने दान—अे छ कर्म श्रावकोअे प्रतिदिन करवा योग्य छे.

श्रावकना आठ मुळगुण

मद्यमांसमधुत्यागी त्यक्तोदुम्बरपंचकः ।
नामतः श्रावकः ख्यातो नान्यथाऽपि तथा गृही ॥७२६॥

(पंचाध्यायी)

अर्थ:–मद्य, मांस तथा मधनो त्याग करवावाळो अने पांच *उदुम्बर फळोने छोडवावाळो गृहस्थ नामथी श्रावक कहेवाय छे पण मद्यादिकनुं सेवन करवावाळो गृहस्थ नामथी पण श्रावक कही शकातो नथी.

[2]पाठ ६ मो

मिच्छा मि दुक्कडं

आ भव ने भवोभव महीं थयो वेरविरोध,
अंध बनी अज्ञानथी, कर्यो अतिशय क्रोध;
ते सवि मिच्छा मि दुक्कडं.

★ जे वृक्षोने तोडवाथी दूध नीकळे छे अेवा वड, पीपर, उंबर, कंठुबर, पाकर वृक्षोने क्षीरवृक्ष अथवा उदुम्बर कहे छे. तेमां सूक्ष्म तथा स्थूल त्रस जीवोनी घणी उत्पत्ति थाय छे.

१, २ आलोचनादि–पदसंग्रह, पानुं १०१, ५७.

जीव खमावुं छुं सवि, क्षमा करजो सदाय,
वेरविरोध टळी जजो, अक्षयपद–सुख सोय;
समभावी आतम थशे.

भारे कर्मी जीवडा, पीअे वेरनुं झेर,
भवाटवीमां ते भमे, पामे नहि शिव–लहेर;
धर्मनो मर्म विचारजो.

पाठ १० मो

[परमपद प्राप्तिनी भावना कायोत्सर्गरूपे कहेवामां आवे छे]

(नमस्कार मंत्र बोलवो)

अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे?
क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो?
सर्व संबंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पंथ जो? अपूर्व० १.

सर्व भावथी औदासीन्यवृत्ति करी,
मात्र देह ते संयमहेतु होय जो;
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं,
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो. अपूर्व० २.

दर्शनमोह व्यतीत थई ऊपज्यो बोध जे,
देह भिन्न केवल चैतन्यनुं ज्ञान जो;
तेथी प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकिये,
वर्ते अेवुं शुद्धस्वरूपनुं ध्यान जो. अपूर्व० ३.

आत्मस्थिरता त्रण संक्षिप्त योगनी,
मुख्यपणे तो वर्ते देहपर्यंत जो;
घोर परिषह के उपसर्गभये करी,
आवी शके नहीं ते स्थिरतानो अंत जो. अपूर्व० ४.

संयमना हेतुथी योगप्रवर्तना,
स्वरूपलक्षे जिन आज्ञा आधीन जो;
ते पण क्षण क्षण घटती जाती स्थितिमां,
अंते थाये निजस्वरूपमां लीन जो. अपूर्व० ५.
पंच विषयमां रागद्वेष विरहितता,
पंच प्रमादे न मळे मननो क्षोभ जो;
द्रव्य, क्षेत्र ने काळ, भाव प्रतिबंधवण,
विचरवुं उदयाधीन पण वीतलोभ जो. अपूर्व० ६.
क्रोध प्रत्ये तो वर्ते क्रोधस्वभावता,
मान प्रत्ये तो दीनपणानुं मान जो;
माया प्रत्ये माया साक्षी भावनी,
लोभ प्रत्ये नहीं लोभ समान जो. अपूर्व० ७.
बहु उपसर्गकर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं,
वंदे चक्री तथापि न मळे मान जो;
देह जाय पण माया थाय न रोममां,
लोभ नहीं छो प्रबळ सिद्धि निदान जो. अपूर्व० ८.
नग्नभाव, मुंडभाव सह अस्नानता,
अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो;
केश, रोम, नख के अंगे शृंगार नहीं,
द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रंथ सिद्ध जो. अपूर्व० ९.
शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता,
मान अमाने वर्ते ते ज स्वभाव जो;
जीवित के मरणे नहीं न्यूनाधिकता,
भव मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो. अपूर्व० १०.

अेकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसन, ने मनमां नहीं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो. अपूर्व० ११.
घोर तपश्चर्यामां पण मनने ताप नहीं,
सरस अन्ने नहीं मनने प्रसन्नभाव जो;
रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी,
सर्वे मान्यां पुद्गल अेक स्वभाव जो. अपूर्व० १२.

(नमस्कार बोली कायोत्सर्ग पारवो)

पाठ ११ मो प्रत्याख्यान

[अेकी साथे बे प्रतिक्रमण करे के केवळ आ प्रतिक्रमण करे त्यारे पहेलां प्रतिक्रमण पाठ १६मां बताव्या प्रमाणे अहीं प्रत्याख्यान करवुं.]

पाठ १२ मो जिनजीनी वाणी

सीमंधर मुखथी फूलडां खरे,
अेनी कुंदकुंद गूंथे माळ रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०
वाणी भली मन लागे रळी,
जेमां सार-समय शिरताज रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०
गूंथ्यां पाहुड ने गूंथ्युं पंचास्ति,
गूंथ्युं प्रवचनसार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.
गूंथ्युं नियमसार, गूंथ्युं रयणसार,
गूंथ्यो समयनो सार रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०

स्याद्वाद केरी सुवासे भरेलो,
जिनजीनो ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

वंदुं जिनेश्वर, वंदुं हुं कुंदकुंद,
वंदुं अे ॐकारनाद रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०

हैडे हजो, मारा भावे हजो,
मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
जिनजीनी वाणी भली रे.

जिनेश्वरदेवनी वाणीना वायरा,
वाजो मने दिनरात रे,
जिनजीनी वाणी भली रे...सीमंधर०

*

पाठ १३ मो अंतिम मंगल

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता ।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम् ॥२३॥

[पद्मनंदिपंचविंशतिका—अेकत्वसप्तति]

अर्थः—जे जीवे प्रसन्नचित्तथी आ चैतन्यस्वरूप आत्मानी वात पण सांभळी छे ते भव्य पुरुष भविष्यमां थनारी मुक्तिनुं अवश्य भाजन थाय छे.

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं ।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

इति बीजुं प्रतिक्रमण पूर्ण थयुं.

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो ।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव ॥

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥

*

(स्वाध्याय माटे)

उपादान—निमित्तना दोहा

प्रश्न :—

गुरु-उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन;
ज्यों नर दूजे पांव बिन चलवेको आधीन. १.

हौं जानै था अेक ही, उपादानसों काज;
थकै सहाई पौन बिन, पानी मांहि जहाज. २.

अर्थ :—गुरुना उपदेशना निमित्त वगर उपादान (आत्मा पोते) बळ वगरनुं छे, जेम माणसने चालवा माटे बीजा पग वगर चाले नहीं तेम.

जे अेम ज जाणे छे के—अेक उपादानथी ज काम थाय (ते बराबर नथी.) जेम पाणीमां वहाण पवननी मदद वगर थाके छे तेम.

उत्तर :—

ज्ञान नैन किरिया चरण, दोऊ शिवमग धार;
उपादान निहचै जहाँ, तहाँ निमित्त व्यवहार. ३.

अर्थ :—सम्यग्दर्शन पूर्वकनुं ज्ञान अने ते ज्ञानमां चरणरूप (स्थिरतारूप) क्रिया ते बंने शिवमार्ग (मोक्षमार्ग)ने धारण करे छे.

ज्यां उपादान खरेखर (निश्चय) होय त्यां निमित्त होय ज छे अे व्यवहार छे. (परवस्तु—निमित्त हाजररूप होय छे अेम परनुं ज्ञान करवुं तेने व्यवहार कहेवामां आवे छे.)

उपादान निज गुण जहां, तहं निमित्त पर होय;
भेदज्ञान परमाण विधि, विरला बूझै कोय. ४.

अर्थ :—ज्यां पोतानो गुण उपादानरूपे तैयार होय त्यां तेने अनुकूळ पर निमित्त होय अेवी रीते भेदज्ञानना प्रवीण पुरुष जाणे छे. अने तेवा कोई विरला ज बूझे छे. (मुक्त थाय छे.)

उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव;
अेक चक्रसों रथ चलै, रविको यहै स्वभाव. ५.

अर्थ :—ज्यां जुओ त्यां उपादाननुं बळ छे; निमित्तनो दाव नथी, अर्थात् निमित्त कांई पण करी शकतुं नथी; जेम सूर्यनो अेवो स्वभाव छे के अेक चक्रथी रथ चाले छे तेम.

सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन;
ज्यों जहाज परवाहमें, तिरै सहज बिन पौन. ६.

नोट :—(१) उपादान = वस्तुनी सहज शक्ति. (२) निमित्त = संयोगी कारण. (३) दृष्टांतमां अेक पैडुं सूर्यना रथनुं कह्युं तेम ज हाल युरोप वगेरे देशोमां पर्वतोमां चालती रेलगाडीओ अेक ज पैडाथी चाले छे. (४) उपादान पोते पोताथी पोतामां कार्य करे छे. निमित्त हाजररूप होय छे, पण ते उपादानने कांइ मदद के असर करी शकतुं नथी अेम बताव्युं छे.

अर्थ :—वस्तु (आत्मा) परसहाय विना ज साधी शकाय छे, तेमां निमित्त केवुं? (निमित्त परमां कांई करतुं नथी.) जेम पाणीना प्रवाहमां वहाण पवन विना सहज तरे छे तेम.

उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेश;
बसै जु जैसे देशमें, धरै सु तैसे भेष. ७.

अर्थ :—उपादाननी रीत निर्वचनीय छे, निमित्तथी उपदेश देवानी रीत छे. जेम जीव जे देशमां वसे ते ते देशनो वेश पहेरे छे तेम.

*

भैया भगवतीदासजी कृत

उपादान—निमित्तनो संवाद

(दोहरा)

पाद प्रणमि जिनदेवके, अेक उक्ति उपजाय;
उपादान अरु निमित्तको, कहुं संवाद बनाय. १.

अर्थ :—जिनदेवनां चरणे प्रणाम करी, अेक अपूर्व कथन तैयार करुं छुं. उपादान अने निमित्तनो संवाद बनावीने ते कहुं छुं. १.

प्रश्न :—

पूछत है कोऊ तहां, उपादान किह नाम;
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम. २.

अर्थ :—त्यां कोई पूछे छे के—उपादान कोनुं नाम? निमित्त कोने कहीअे? अने क्यारथी तेमनो संबंध छे ते कहो. २.

उत्तर :—

उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव;
है निमित्त परयोगतें, बन्यो अनादि बनाव. ३.

अर्थ :—उपादान पोतानी शक्ति छे, ते जीवनो मूळ स्वभाव छे; अने परसंयोग निमित्त छे. तेमनो संबंध अनादिथी बनी रह्यो छे. ३.

निमित्त :—

निमित्त कहै मोकों सबै, जानत हैं जगलोक;
तेरो नाँव न जानहीं, उपादान को होय. ४.

अर्थ :—निमित्त कहे छे जगतना सर्व लोको मने जाणे छे; उपादान शुं छे तेनुं नाम पण जाणता नथी. ४.

उपादान :—

उपादान कहै रे निमित्त, तू कहा करे गुमान;
मोकों जानें जीव वे, जो हैं सम्यक्‌वान. ५.

अर्थ :—उपादान कहे छेः—अरे निमित्त ! तुं अभिमान शा माटे करे छे? जे जीव सम्यग्ज्ञानी (आत्माना साचा ज्ञानी) छे ते मने जाणे छे. ५.

निमित्त :—

कहैं जीव सब जगतके, जो निमित्त सोई होय;
उपादानकी बातको, पूछे नांहि कोय. ६.

अर्थ :—निमित्त कहे छेः—जगतना सर्व जीवो कहे छे के जो निमित्त होय तो (कार्य) थाय, उपादाननी वातनुं कोई कांई पूछतुं नथी. ६.

उपादान :—

उपादान बिन निमित्त तू, कर न सकै इक काज;
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज. ७.

अर्थ :—उपादान कहे छेः—अरे निमित्त ! अेक पण कार्य उपादान विना थई शकतुं नथी. जगत न जाणे तेथी शुं थयुं? जिनराज ते जाणे छे.

निमित्त :—

देव जिनेश्वर, गुरु यती, अरु जिन-आगम सार;
इहि निमित्ततें जीव सब, पावत हैं भवपार. ८.

अर्थ :—निमित्त कहे छेः—जिनेश्वर देव, निर्ग्रंथ गुरु अने वीतरागनां आगम उत्कृष्ट छे; ओ निमित्तो वडे बधा जीवो भवनो पार पामे छे. ८.

उपादान :—

यह निमित्त इस जीवको, मिल्यो अनंती बार;
उपादान पलट्यो नहीं, तौ भटक्यौ संसार. ९.

अर्थ :—उपादान कहे छेः—ओ निमित्तो आ जीवने अनंती वार मळ्या, पण उपादान (जीव पोते) पलट्युं नहि तेथी ते संसारमां भटक्यो. ९.

निमित्त :—

कै केवलि कै साधुके, निकट भव्य जो होय;
सो क्षायक सम्यक् लहै, यह निमित्तबल जोय. १०.

अर्थ :—निमित्त कहे छेः—जो केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली मुनि पासे भव्य जीव होय तो क्षायिक सम्यक्त्व प्रगटे छे ओ निमित्तनुं बळ जुओ! १०.

उपादान :—

केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय;
पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायक ताको होय. ११.

अर्थ :—उपादान कहे छेः—केवळी अने श्रुतकेवळी मुनिराज पासे घणा लोको रहे छे, पण जेनो धणी (आत्मा) सवळो थाय तेने ज क्षायिक (सम्यक्त्व) थाय छे. ११.

निमित्त :—

हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं;
जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाकिं. १२.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—जे हिंसादिक पापो करे छे ते नर्कमां जाय छे. जो निमित्त कामनुं न होय तो एम शा माटे कह्युं? १२.

उपादान :—

हिंसामें उपयोग जिहं, रहै ब्रह्मके राच;
तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच. १३.

अर्थ :—हिंसामें जेनो उपयोग (चैतन्यना परिणाम) होय अने जे आत्मा तेमां राची रहे ते ज नर्कमां जाय छे, (भाव) मुनि कदापि नर्कमां जता नथी. १३.

निमित्त :—

दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय;
जो निमित्त झूठो कहो, यह क्यों मानै लोय. १४.

अर्थ :—निमित्त कहे छेः—दया, दान, पूजा करे तो जीव जगतमां सुखी थाय छे. जो निमित्त, तमे कहो छो तेम, जूठुं होय तो लोको एम केम माने? १४.

उपादान :—

दया दान पूजा भली, जगत मांहिं सुखकार;
तहं अनुभवको आचरन, तहं यह बंध विचार. १५.

अर्थ :—उपादान कहे छेः—दया, दान, पूजा, वगेरे शुभभाव भले जगतमां बाह्य सगवड आपे, पण अनुभवना आचरणनो विचार करतां, ए बधा बंध छे (धर्म नथी). १५.

निमित्त :—

यह तो बात प्रसिद्ध है, सोच देख उर मांहिं;
नरदेही के निमित्त बिन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं. १६.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—ऐ वात तो प्रसिद्ध छे के नरदेहना निमित्त विना जीव मुक्ति पामतो नथी. तेथी हे उपादान! तुं आ बाबतनो अंतरमां विचार करी जो. १६.

उपादान :—

देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात;
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात! १७.

अर्थ :—उपादान निमित्तने कहे छे :—अरे भाई! देहनुं पींजरुं तो जीवने मोक्ष जतां रोके छे, पण उपादाननी शक्तिथी मोक्ष थाय छे.

नोंध :—अहीं देहनुं पींजरुं जीवने मोक्ष जतां रोके छे ऐम कह्युं छे ते व्यवहारकथन छे. जीव शरीर उपर लक्ष करी, तेमां मारापणानी पक्कड करी, पोते विकारमां रोकाय छे, त्यारे शरीरनुं पींजरुं जीवने रोके छे ऐम उपचारथी कहेवाय छे. १७.

निमित्त :—

उपादान सब जीवपै, रोकनहारो कौन;
जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, बिन निमित्तके हौन. १८.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—उपादान तो बधा जीवोने छे, तो पछी तेमने रोकनार कोण छे? तेओ मुक्तिमां केम जता नथी? निमित्त नथी मळतुं तेथी तेम थाय छे. १८.

उपादान :—

उपादान सु अनादिको, उलट रह्यौ जग मांहिं;
***सुलटत ही सूधे चले, सिद्धलोकको जाहिं.* १६.**

अर्थ :—उपादान कहे छे :—जगतमां उपादान अनादिथी ऊलटुं थई रह्युं छे सुलटुं थतां सीधुं चाले छे अर्थात् साचुं ज्ञान अने चारित्र थाय छे अने तेथी सिद्धलोकमां ते जाय छे (मोक्ष पामे छे.) १६.

निमित्त :—

कहुं अनादि बिन निमित्त ही, उलट रह्यो उपयोग;
ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग. २०.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—अनादिथी निमित्त वगर ज उपयोग (ज्ञाननो व्यापार) शुं ऊलटो थई रह्यो छे? हे उपादान! अेवी तारी वात व्याजबी संभवती नथी. २०.

उपादान :—

उपादान कहै रे निमित्त, हमपै कही न जाय;
अैसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवनराय. २१.

अर्थ :—उपादान कहे छे :—अरे निमित्त! माराथी कही शकाय नहि; जिन केवळी त्रिभुवनराय अेम ज देखे छे.

नोंध :—अहीं कहे छे के :—उपादानमां कार्य थाय त्यारे निमित्त स्वयं हाजर होय, पण उपादानने ते कांई करी शकतुं नथी अेम अनंत ज्ञानीओ तेमना ज्ञानमां देखे छे. २१.

निमित्त :—

जो देख्यो भगवानने, सो ही सांचो आहि;
हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे काहि. २२.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—भगवाने जे देख्युं ते ज साचुं छे अे खरुं, पण मारो अने तारो संबंध अनादिनो छे, माटे आपणामांथी बळवान कोने कहेवो? (बन्ने सरखा छीअे अेम तो कहो). २२.

उपादान :—

उपादान कहे वह बली, जाको नाश न होय;
जो उपजत विनशत रहै, बली कहांतें सोय. २३.

अर्थ :—उपादान कहे छे जेनो नाश न थाय ते बळवान; जे ऊपजे अने वणसे ते बळवान केवी रीते होई शके? (न ज होय).

नोंध :—उपादान त्रिकाळी अखंड अेकरूप वस्तु पोते छे, तेथी तेनो नाश नथी. निमित्त तो संयोगरूप छे, आवे ने जाय तेथी नाशरूप छे, तेथी उपादान ज बळवान छे. २३.

निमित्त :—

उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार;
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार. २४.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—हे उपादान! तारुं जो जोर छे तो तुं आहार शा माटे ले छे? संसारना बधा जीवो पर निमित्तना योगथी जीवे छे. २४.

उपादान :—

जो अहारके जोगसों, जीवत है जग मांहिं;
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नांहिं. २५.

अर्थ :—उपादान कहे छे :—जो आहारना जोगथी जगतना जीवो जीवता होय तो संसारवासी कोई जीव मरत ज नहि. २५.

निमित्त :—

सूर सोम मणि अग्निके, निमित लखैं ये नैन;
अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन. २६.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—सूर्य, चंद्र, मणि के अग्निनुं निमित्त होय तो आंख देखी शके छे; उपादान जो देखवानुं (काम) आपतुं होय तो अंधकारमां ते क्यां गयुं? (अंधकारमां केम आंखेथी देखातुं नथी?) २६.

उपादान :—

सूर सोम मणि अग्नि जो, करैं अनेक प्रकाश;
नैनशक्ति बिन ना लखै, अंधकार सम भास. २७.

अर्थ :—उपादान कहे छे :—जोके सूर्य, चंद्र, मणि अने अग्नि अनेक प्रकारनो प्रकाश करे छे तोपण देखवानी शक्ति विना देखाय नहीं; बधुं अंधकार जेवुं भासे छे. २७.

निमित्त :—

कहै निमित्त वे जीव को मो बिन जगके मांहि?
सबै हमारे वश परे, हम बिन मुक्ति न जाहिं. २८.

अर्थ:—निमित्त कहे छे:—मारा विना जगतमां जीव कोण मात्र? बधा मारे वश पड्या छे; मारा विना मुक्ति थती नथी? २८.

उपादान:—

उपादान कहै रे निमित्त! ऐसे बोल न बोल;
तोको तज निज भजत हैं, तेही करैं किलोल. २९.

अर्थ:—उपादान कहे छे:—अरे निमित्त! एवां वचनो न बोल. तारा उपरनी दृष्टिने तजी जे जीव पोतानुं भजन करे छे ते ज कल्लोल (आनंद) करे छे. २९.

निमित्त:—

कहै निमित्त हमको तजै, ते कैसे शिव जात?
पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हुं क्रिया विख्यात. ३०.

अर्थ:—निमित्त कहे छे:—अमने तजवाथी मोक्ष केवी रीते जवाय? पांच महाव्रत प्रगट छे; वळी बीजी क्रिया पण विख्यात छे. (तेने लोको मोक्षनुं कारण माने छे). ३०.

उपादान:—

पंचमहाव्रत जोगत्रय, और सकल व्यवहार;
परको निमित्त खपायके, तब पहुंचे भवपार. ३१.

अर्थ:—उपादान कहे छे:—पांच महाव्रत, मन, वचन अने काय ए त्रण तरफनुं जोडाण, वळी बधो व्यवहार अने पर निमित्तनुं लक्ष ज्यारे जीव छोडे त्यारे भवपारने पहोंची शके छे. ३१.

निमित्त:—

कहै निमित्त जग मैं बडो, मोतैं बडो न कोय;
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतैं होय. ३२.

अर्थ:—निमित्त कहे छे:—जगमां हुं मोटो छुं, माराथी मोटो

कोई नथी; बधा त्रण लोकना नाथ (तीर्थंकरो) पण मारी कृपाथी थाय छे.

नोंध :—सम्यग्दर्शननी भूमिकामां ज्ञानी जीवने शुभ विकल्प आवतां तीर्थंकर-नामकर्म बंधाय छे, ते दृष्टांत रजू करी, पोतानुं बळवानपणुं 'निमित्त' आगळ धरे छे. ३२.

उपादान :—

उपादान कहै तू कहा, चहुं गतिमें ले जाय;
तो प्रसादतैं जीव सब, दुःखी होंहिं रे भाय. ३३.

अर्थ :—उपादान कहे छे :—तुं कोण ? तुं तो जीवने चारे गतिमां लई जाय छे. भाई! तारी कृपाथी सर्वे जीवो दुःखी ज थाय छे.

नोंध :—निमित्ताधीन दृष्टिनुं फळ चारे गति अेटले संसार छे. निमित्त पराणे जीवने चार गतिमां लई जाय छे अेम समजवुं नहि. ३३.

निमित्त :—

कहै निमित्त जो दुःख सहै, सो तुम हमहि लगाय;
सुखी कौनतैं होत है, ताको देहु बताय. ३४.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—जीव दुःख सहन करे छे तेनो दोष तुं अमारा उपर लगावे छे, तो जीव सुखी शाथी थाय छे ते बतावी दे? ३४.

उपादान :—

जो सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं;
ये सुख, दुखके मूल हैं, सुख अविनाशी माहिं. ३५.

अर्थ :—उपादान कहे छे :—जे सुखने तुं सुख कहे छे ते सुख ज नथी; अे सुख तो दुःखनुं मूळ छे, आत्माना अंतरमां अविनाशी सुख छे. ३५.

निमित्त :—

अविनाशी घट घट बसै, सुख क्यों विलसत नांहि?
शुभ निमित्तके योग बिन, परे परे विललाहिं. ३६.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—अविनाशी (सुख) तो घट घट (दरेक जीव)मां वसे छे, तो जीवोने सुखनो विलास (भोगवटो) केम नथी? शुभ निमित्तना योग वगर जीव क्षणेक्षणे दुःखी थई रह्यो छे. ३६.

उपादान :—

शुभ निमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार;
पै इक सम्यक् दर्श बिन, भटकत फिर्यो गंवार. ३७.

अर्थ :—उपादान कहे छे :—शुभ निमित्त आ जीवने घणा भवोमां मळ्युं; पण एक सम्यग्दर्शन विना आ जीव गमारपणे (अज्ञानभावे) भटक्या करे छे. ३७.

निमित्त :—

सम्यक् दर्श भये कहा त्वरित मुक्तिमें जाहिं;
आगे ध्यान निमित्त है, ते शिवको पहुंचाहिं. ३८.

अर्थ :—निमित्त कहे छे :—सम्यग्दर्शन थये शुं थयुं? शुं तेथी तुरत ज मुक्तिमां जवाय छे? आगळ पण ध्यान निमित्त छे; ते शिव (मोक्ष) पदमां पहोंचाडे छे. ३८.

उपादान :—

छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति;
तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति. ३९.

अर्थ :—उपादान कहे छे—ध्याननी धारणा छोडीने, योगनी रीतने समेटी लईने, कर्मनी जाळने तोडी, पुरुषार्थ वडे शिवपदनी प्राप्ति जीव करे छे. ३९.

निमित्तनो पराजय :—

तब निमित्त हार्यो तहां, अब नहिं जोर बसाय;
उपादान शिवलोकमें, पहुंच्यो कर्म खपाय. ४०.

अर्थ :—त्यारे निमित्त त्यां हार्युं; हवे ते कांई जोर करतुं नथी. उपादान कर्मनो क्षय करी शिवलोकमां (सिद्धपदमां) पहोंच्युं. ४०.

उपादाननी जीत :—

उपादान जीत्यो तहां, निजबल कर परकास;
सुख अनंत ध्रुव भोगवै, अंत न बरन्यो तास. ४१.

अर्थ :—आ रीते पोताना बळनो प्रकाश करीने उपादान जीत्युं. (ते उपादान हवे) अनंत ध्रुव सुखने भोगवे छे के जेनो अंत आवतो नथी. ४१.

तत्त्वस्वरूप :—

उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर;
जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुंचे भवतीर. ४२.

अर्थ :—उपादान अने निमित्त ओ बधा जीवोने होय छे, पण जे वीर छे ते निजशक्तिने संभाळी ले छे अने भवनो पार पामे छे. ४२.

आत्मानो महिमा :—

भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे वरनी जाय;
वचन-अगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बनाय. ४३.

अर्थ :—भैया (भगवतीदास) कहे छे :—ब्रह्मनो (आत्मानो) महिमा केम वर्णव्यो जाय? ते वस्तु वचनथी अगोचर छे—क्यां वचनो वडे बतावाय? ४३.

सरस संवाद :—

उपादान अरु निमित्तको, सरस बन्यो संवाद;
समदृष्टिको सुगम है, मूरखको बकवाद. ४४.

अर्थ :—उपादान अने निमित्तनो आ सुंदर संवाद बन्यो छे; सम्यग्दृष्टिने ते सहेलो छे, मूर्खने बकवादरूप लागशे. ४४.

आत्माना गुणोने ओळखे ते आ स्वरूप जाणे.

जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद;
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद. ४५.

अर्थ :—आत्माना गुणोने जे जाणे ते आनो मर्म जाणे; साक्षी जिनागमथी मळे छे. माटे खेद (संदेह) करवो नहि. ४५.

आग्रामां संवाद रच्यो :—

नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वास;
तिहं थानक रचना करी, 'भैया' स्वमतिप्रकास. ४६.

अर्थ :—आगरा शहेर जैनी जनोना वास माटे अग्र छे. ते क्षेत्रे आ रचना (भगवतीदास) भैयाओ पोताना ज्ञान अनुसार करी छे अथवा पोताना ज्ञानना प्रकाश माटे करी छे. ४६.

रचनाकाल :—

संवत विक्रम भूपको, सत्रहसै पंचास;
फाल्गुन पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश. ४७.

अर्थ :—विक्रम राजाना संवत १७५०ना फागणना प्रथम पक्षमां दशे दिशामां आनो प्रकाश थयो. ४७.

इति उपादान—निमित्त संवाद

*

तात्त्विक सुवाक्य

दंसणमूलो धम्मो। धर्मनुं मूळ दर्शन छे.

समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिन-वैन.

हुं सच्चिदानंद परमात्मा छुं.

स्वरूपस्थित सद्‌गुरुदेवनो प्रभावना-उदय जगतनुं कल्याण करो, जयवंत वर्तो.

आत्मा पोतापणे छे अने परपणे नथी ओवी जे दृष्टि ते ज खरी अनेकांतदृष्टि छे.

वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो;
अब क्यों न बिचारत है मनसें, कछु और रहा उन साधनसें.

दुर्लभ मनुष्यपणुं पामीने जे विषयोमां रमे छे ते राखने माटे रत्नने बाळे छे.

महापुरुषनां आचरण जोवा करतां तेनुं अंतःकरण जोवुं अे वधारे परीक्षा छे.

गमे तेवा तुच्छ विषयमां प्रवेश छतां उज्ज्वल आत्माओनो स्वतः वेग वैराग्यमां झंपलाववुं अे छे.

ज्ञानथी ज राग-द्वेष निर्मूळ थाय. ज्ञाननुं मुख्य साधन विचार छे. विचारदशानुं मुख्य साधन सत्पुरुषनां वचननुं यथार्थ ग्रहण छे.

गम पड्या विना आगम अनर्थकारक थई पडे छे. संत विना अंतनी वातमां अंत पमातो नथी.

अंतरनुं सुख अंतरनी स्थितिमां छे, स्थिति थवा माटे बाह्य पदार्थोनुं आश्चर्य भूल. समश्रेणी रहेवी दुर्लभ छे, निमित्ताधीन वृत्ति फरी फरी थई जाय छे. न थवा अचळ गंभीर उपयोग राख.

शुद्ध उपयोग अे धर्म; भावे भवनो अभाव.

क्रिया ओ कर्म, उपयोग ओ धर्म, परिणाम ओ बंध; भूल ओ मिथ्यात्व, शोकने संभारवो नहीं—आ उत्तम वस्तु ज्ञानीओओ मने आपी.

तुज पादथी स्पर्शाई ओवी धूलिने पण धन्य छे.

जेने पुण्यनी रुचि छे तेने जडनी रुचि छे, तेने आत्माना धर्मनी रुचि नथी.

अहो! श्री सत्पुरुष! अहो! तेमनां वचनामृत,

मुद्रा अने सत्‌समागम! वारंवार अहो! अहो!!

जैनं जयति शासनं अनादिनिधनम्.

चैतन्यपदार्थनी क्रिया चैतन्यमां होय, जडमां न होय.

निरंजन ज्ञानमयी परमात्मद्रव्य उपादेय छे.

शिवमय, अनुपम–ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरूप उपादेय छे.

शुद्धात्मद्रव्यनी प्राप्तिना उपादानरूप निर्विकल्प समाधि उपादेय छे.

केवळज्ञानादि गुणरूप जे शुद्धात्मस्वरूप छे ते आराधवा योग्य छे.

चिदानंद चिद्रूप ओक अखंडस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व ज सत्य छे.

*

श्री पद्मनन्दि आचार्य विरचिता पद्मनन्दिपंचविंशतिकामांथी

आलोचना अधिकार

श्री पद्मनन्दि आचार्यदेव आदेमंगळथी आलोचना अधिकारनी शरूआत करे छे :—

१. **अर्थ :**—हे जिनेश ! हे प्रभो ! जो सज्जनोनुं मन, आंतर तथा बाह्य मळरहित थइने तत्त्वस्वरूप तथा वास्तविक आनंदना निधान एवा आपनो आश्रय करे, जो तेमना चित्तमां आपना नामना स्मरणरूप अनंत प्रभावशाळी महामंत्र मोजूद होय अने आप द्वारा प्रगट थयेल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्गमां जो तेमनुं आचरण होय तो ते सज्जनोने इच्छित विषयनी प्राप्तिमां विघ्न शेनुं होय ? अर्थात् न होय.

भावार्थ :—जो सज्जनोना मनमां आपनुं ध्यान होय तथा आपना नाम—स्मरणरूप महामंत्र मोजूद होय अने तेओ मोक्षमार्गमां गमन करवावाळा होय तो तेमने अभीष्टनी प्राप्तिमां कोई प्रकारनुं विघ्न आवी शकतुं नथी.

हवे आचार्यदेव स्तुतिद्वारा 'देव कोण होई शके तथा केवळज्ञान प्राप्तिनो क्रम केवो होय' ते वर्णवे छे :—

२. **अर्थ :**—हे जिनेन्द्रदेव ! संसारना त्याग अर्थे परिग्रह-रहितपणुं, रागरहितपणुं, *समता, सर्वथा कर्मोनो नाश अने अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य सहित समस्त लोकालोकने प्रकाशनारुं

★ वीतराग भाव

केवळज्ञान अेवो क्रम आपने ज प्राप्त थयो हतो, परंतु आपथी अन्य कोइ देवने अे क्रम प्राप्त थयो नथी. तेथी आप ज शुद्ध छो अने आपना चरणोनी सेवा सज्जन पुरुषोअे करवी योग्य छे.

भावार्थ :—हे भगवन् ! आपे ज संसारथी मुक्त थवा अर्थे समस्त परिग्रहनो त्याग कर्यो छे तथा रागभावने छोडयो छे अने समताने धारण करी छे तथा अनंत विज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख अने अनंत वीर्य आपने ज प्रगट थयां छे तेथी आप ज शुद्ध अने सज्जनोनी सेवाने पात्र छो.

सेवानो दृढ निश्चय अने प्रभु-सेवानुं माहात्म्य :—

३. **अर्थ :**—हे त्रैलोक्यपते ! आपनी सेवामां जो मारो दृढ निश्चय छे तो मने अत्यंत बळवान संसाररूप वैरीने जीतवो कांइ मुश्केल नथी. केमके जे मनुष्यने जळवृष्टिथी हर्षजनक उत्तम फुवारासहित घर प्राप्त थाय तो ते पुरुषने जेठ मासनो प्रखर मध्याह्न –ताप शुं करी शके तेम छे ? अर्थात् कांइ करी शके नहि.

भावार्थ :—हे त्रण लोकना इश ! जेम शीतळ जळ वडे ऊडता फुवाराथी सुशोभित उत्तम घरमां बेठेला पुरुषने जेठ मासनी बपोरनी अत्यंत गरमी पण कांइ करी शके नहि तेम हुं निश्चयपूर्वक आपनी सेवामां दृढपणे स्थित छुं तो मने बळवान संसाररूप वैरी पण जराय त्रास आपी शके नहि.

भेदज्ञान द्वारा साधकदशा :—

४. **अर्थ :**—आ पदार्थ साररूप छे अने आ पदार्थ असाररूप छे अे प्रकारे सारासारनी परीक्षामां अेकचित्त थइ, जे कोइ बुद्धिमान मनुष्य त्रणे लोकना समस्त पदार्थोनो, अबाधित गंभीर दृष्टिथी विचार करे छे तो ते पुरुषनी दृष्टिमां हे भगवान ! आप ज अेक सारभूत

पदार्थ छो अने आपथी भिन्न समस्त पदार्थो असारभूत ज छे. अतः आपना आश्रयथी ज मने परम संतोष थयो छे.

हवे आचार्यदेव 'पूर्ण साध्य' वर्णवे छेः—

५. **अर्थः**—हे, जिनेश्वर! समस्त लोकालोकने अेक साथे जाणनारुं आपनुं ज्ञान छे, समस्त लोकालोकने अेक साथे देखनारुं आपनुं दर्शन छे, आपने अनंत सुख अने अनंत बळ छे तथा आपनी प्रभुता पण निर्मलतर छे, वळी आपनुं शरीर [1]देदीप्यमान छे; तेथी जो योगीश्वरोअे सम्यग् योगरूप [2]नेत्रद्वारा आपने प्राप्त करी लीधा तो तेओअे शुं न जाणी लीधुं? शुं न देखी लीधुं? तथा तेओअे शुं न प्राप्त करी लीधुं? अर्थात् सर्व करी लीधुं.

भावार्थः—जो योगीश्वरोअे पोतानी उत्कृष्ट योगदृष्टिथी अनंत गुणसंपन्न आपने जोई लीधा तो तेओअे सर्व देखी लीधुं, सर्व जाणी लीधुं, अने सर्व प्राप्त करी लीधुं.

पूर्णनी प्राप्तिनुं प्रयोजनः—

६. **अर्थः**—हे जिनेन्द्र! आपने ज हुं त्रण लोकना स्वामी मानुं छुं, आपने ज जिन अर्थात् अष्ट कर्मोना विजेता तथा मारा स्वामी मानुं छुं, मात्र आपने ज भक्तिपूर्वक नमस्कार करुं छुं. सदा आपनुं ज ध्यान करुं छुं, आपनी ज सेवा अने स्तुति करुं छुं अने केवळ आपने ज मारुं शरण मानुं छुं. अधिक शुं कहेवुं? जो कंइ संसारमां प्राप्त थाओ तो अे थाओ के आपना सिवाय अन्य कोइ पण साथे मारे प्रयोजन न रहे.

भावार्थः—हे भगवन्! आप साथे ज मारे प्रयोजन रहे. अने

---

१ श्री तीर्थंकर प्रभुनुं शरीर परम औदारिक अने स्फटिक रत्न जेवुं निर्मळ होइने देदीप्यमान होय छे.

२ श्रद्धा—ज्ञान.

आपथी भिन्न अन्यथी मारे कोई प्रकारनुं प्रयोजन न रहे अेटली विनयपूर्वक प्रार्थना छे.

हवे आचार्यदेव 'आलोचना' नो आरंभ करे छेः—

७. **अर्थः**—हे जिनेश्वर! में भ्रांतिथी मन, वचन अने कायाद्वारा भूतकालमां अन्य पासे पाप कराव्यां छे, स्वयं कर्यां छे अने पाप करनारा अन्योने अनुमोद्यां छे तथा तेमां मारी सम्मति आपी छे. वळी वर्तमानमां हुं मन, वचन अने कायाद्वारा अन्य पासे पाप करावुं छुं, स्वयं पाप करुं छुं अने पाप करनारा अन्योने अनुमोदुं छुं, तेम ज भविष्यकालमां हुं मन, वचन अने कायाद्वारा अन्य पासे पाप करावीश, स्वयं पाप करीश अने पाप करनारा अन्योने अनुमोदीश— ते समस्त पापनी आपनी पासे बेसी जाते निन्दा–गर्हा करनार अेवो हुं तेना सर्व पाप सर्वथा मिथ्या थाओ.

भावार्थः—हे जिनेश्वर! भूत, वर्तमान, भविष्यत्–त्रणे कालमां जे पापो में मन–वचन–कायाद्वारा कारित, कृत अने अनुमोदनथी ऊपार्जन कर्यां छे, हुं करुं छुं अने करीश—अे समस्त पापोनो अनुभव करी हुं आपनी समक्ष स्वनिन्दा करुं छुं; माटे मारा ते समस्त पापो सर्वथा मिथ्या थाओ.

आचार्यदेव 'प्रभुनी अनंत ज्ञान-दर्शनशक्ति वर्णवता आत्म-शुद्धि अर्थे आत्मनिंदा करे छेः—

८. **अर्थः**—हे जिनेन्द्र! जो आप भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकाळगोचर अनंत पर्यायोयुक्त लोकालोकने सर्वत्र अेक साथे जाणो छो तथा देखो छो, तो हे स्वामिन्! मारा अेक जन्मना पापोने शुं आप नथी जाणता? अर्थात् अवश्यमेव आप जाणो छो; तेथी हुं आत्मनिंदा करतो करतो आपनी पासे स्वदोषोनुं कथन (आलोचन) करुं छुं; अने ते केवळ शुद्धि अर्थे ज करुं छुं.

भावार्थ :—हे भगवन्! जो आप अनंत भेदसहित लोक तथा अलोकने अेकसाथे जाणो छो अने देखो छो तो आप मारा समस्त दोषोने पण सारी रीते जाणता ज हो. वळी हुं आपनी सामे निज दोषोनुं कथन (आलोचन) करुं छुं ते केवळ आपने संभळाववा माटे नहि, किन्तु शुद्धि अर्थे ज करुं छुं.

हवे आचार्यदेव भव्य जीवोने तेमना आत्माने त्रण शल्य रहित राखवानो बोध आपे छे :—

९. अर्थ :—हे प्रभो! व्यवहार नयनो आश्रय करनार अथवा मूलगुण तथा उत्तरगुणोने धारण करनार मारा जेवा मुनिने जे दुषणोनुं संपूर्ण रीते स्मरण छे ते दूषणनी शुद्धिअर्थे आलोचना करवाने आपनी सामे सावधानीपूर्वक बेठो छुं. केमके ज्ञानवान भव्य जीवोअे सदा पोताना हृदय मायाशल्य निदानशल्य अने मिथ्यात्वशल्य —अे त्रण शल्य रहित ज राखवा जोइअे.

स्वभावनी सावधानी :—

१०. अर्थ :—हे भगवन्! आ संसारमां सर्व जीव वारंवार असंख्यात लोकप्रमाण प्रगट तथा अप्रगट नाना प्रकारना *विकल्पो सहित होय छे. वळी अे जीव जेटला प्रकारना विकल्पो सहित होय छे. तेटला ज विविध प्रकारना दुःखो सहित पण छे. परंतु जेटला विकल्पो छे तेटला प्रायश्चित्तो शास्त्रमां नथी; तेथी ते समस्त असंख्यात लोकप्रमाण विकल्पोनी शुद्धि आपनी समीपे ज थाय छे.

भावार्थ :—यद्यपि दूषणोनी शुद्धि प्रायश्चित्त करवाथी थाय छे, किन्तु हे जिनपते! जेटलां दूषणो छे तेटलां प्रायश्चित्तो शास्त्रमां कह्यां नथी; तेथी समस्त दूषणोनी शुद्धि आपनी समीपे ज थाय छे.

★ विकल्पो = शुभ, अशुभ भावो.

परथी पराङ्गमुख थइ स्वनी प्राप्ति :—

११. **अर्थ** :—हे देव! सर्व प्रकारना परिग्रहरहित, समस्त शास्त्रोनो ज्ञाता, क्रोधादि कषायरहित, शान्त, अेकांतवासी भव्य जीव, बधा बाह्य पदार्थोथी मन तथा ईंद्रियोने पाछा हठावी अने अखंड निर्मळ सम्यग्ज्ञाननी मूर्तिरूप आपमां स्थिर थइ, आपने ज देखे छे ते मनुष्य आपना सान्निध्य (समीपता) ने प्राप्त करे छे.

भावार्थ :—ज्यां सुधी मन तथा ईंद्रियोना व्यापार बाह्य पदार्थोमां जोडायेला रहे छे त्यां सुधी कोइ पण मनुष्य आपना स्वरूपने प्राप्त करी शकतो नथी; परंतु जे मनुष्य मन तथा ईंद्रियोने बाह्य पदार्थोथी पाछा हठावी ले छे ते वास्तविकपणे आपना स्वरूपने देखी अने जाणी शके छे. माटे जे मनुष्ये समस्त प्रकारना परिग्रहोथी रहित थइ, शास्त्रोना सारी रीते ज्ञाता थइ, शान्त अने अेकांतवासी थइ, मन तथा ईंद्रियोने बाह्य पदार्थोथी पाछा हठावी लइ अने तेमने आपना स्वरूपमां जोडी दइ आपने जोइ लीधा छे, ते मनुष्ये आपना समीपपणाने प्राप्त कर्युं छे अेम सारी रीते निश्चित छे.

स्वभावनी अेकाग्रताथी उत्तमपद—मोक्षनी प्राप्ति :—

१२. **अर्थ** :—हे अर्हत् प्रभु! पूर्व भवमां कष्टथी संचय करेल महा पुण्यथी जे मनुष्य, त्रण लोकना पूजार्ह (पूजाने योग्य) आपने पाम्यो छे ते मनुष्यने, ब्रह्मा, विष्णु आदिने पण निश्चयपूर्वक अलभ्य अेवुं उत्तम पद प्राप्त थाय छे. हे नाथ! हुं शुं करुं? आपनामां अेक चित्त कर्या छतां मारुं मन प्रबळपणे बाह्य पदार्थो प्रत्ये दोडे छे अे मोटो खेद छे.

भावार्थ :—हे भगवन्! जे मनुष्ये आपने प्राप्त कर्या छे ते मनुष्यने उत्तम पदनी प्राप्ति थाय छे. स्वयं ब्रह्मा, विष्णु पण ते प्राप्त करी शकता नथी. परंतु हे जिनेन्द्र! आ सर्व वात जाणतां छतां अने

मारुं चित्त आपनामां लगाडतां छतां पण बाह्य पदार्थोमां दोडी–दोडी जाय छे अे ज मोटो खेद छे.

मोक्षार्थे वीर्यनो वेग :—

१३. **अर्थ :**—हे जिनेश! आ संसार नाना प्रकारना दुःखो देनार छे. ज्यारे वास्तविक सुखनो आपनार तो *मोक्ष छे, तेथी ते मोक्षनी प्राप्ति अर्थे अमे समस्त धन, धान्य आदि परिग्रहोनो त्याग कर्यो, तपोवन (तपथी पवित्र थयेली भूमि)मां वास कर्यो, सर्व प्रकारना संशय पण छोड्या अने अत्यंत कठिन व्रत पण धारण कर्या, हजी सुधी तेवां दुष्कर व्रतो धारण कर्या छतां पण सिद्धि (मोक्ष) नी प्राप्ति न थइ. केम के प्रबळ पवनथी कंपायेला पांदडानी माफक अमारुं मन रात्रि–दिवस बाह्य पदार्थोमां भ्रमण करतुं रहे छे.

मनने संसारनुं कारण जाणी पश्चात्ताप :—

१४. **अर्थ :**—हे भगवन्! जे मन, बाह्य पदार्थोने मनोहर मानी तेमनी प्राप्ति माटे ज्यां त्यां भटक्या करे छे, जे ज्ञानस्वरूपी आत्माने विना प्रयोजने सदा अत्यंत व्याकुल कर्या करे छे, जे इन्द्रियरूप गामने वसावे छे (अर्थात् आ मननी कृपाथी ज ईंद्रियोनी विषयोमां स्थिति थाय छे), अने जे संसार उत्पादक कर्मोनो परम मित्र छे, (अर्थात् मन आत्मारूप गृहमां कर्मोने सदा लावे छे), ते मन, ज्यां सुधी जीवित रहे छे त्यां सुधी मुनिओने क्यांथी कल्याणनी प्राप्ति होइ शके! अर्थात् कल्याणनी प्राप्ति होइ शके नहि.

भावार्थ :—ज्यां सुधी आत्मामां कर्मोनुं आवागमन रह्यां ज करे छे त्यां सुधी आत्मा सदा व्याकुळ ज थतो रहे छे. ते कर्म आत्मामां मनद्वारा आवे छे; केम के मनना आश्रयथी इन्द्रियो, रूप आदि देखवामां प्रवृत्त थाय छे अने रूप आदिने देखी जीव राग–द्वेष आदि

★ मोक्ष = आत्मानी संपूर्ण निर्मळ दशा.

उत्पन्न करे छे, त्यारे तेने ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मोनी उत्पत्ति थाय छे; तेथी ते कर्मोना संबंधथी आत्मा सदा व्याकुळ ज रहे छे अने ज्यारे आत्मा ज व्याकुळ रहे त्यारे मुनिओने कल्याणनी प्राप्ति पण क्यांथी होइ शके? माटे मन ज कल्याणने रोकनारुं छे.

मोहना नाश माटे प्रार्थना :—

१५. **अर्थ :**—मारुं मन, निर्मळ तथा शुद्ध अखंड ज्ञानस्वरूप आपमां लगाव्यां छतां पण, मृत्यु तो आववानुं ज छे एवा विकल्प वडे, आपथी अन्य बाह्य समस्त पदार्थो तरफ निरंतर घूम्या करे छे. हे स्वामिन्! तो शुं करवुं? केम के आ जगतमां, मोहवशात् कोने मृत्युनो भय नथी? सर्वने छे. माटे सविनय प्रार्थना छे के समस्त प्रकारना अनर्थो करनार तथा अहित करनार मारा मोहने नष्ट करो.

भावार्थ :—ज्यां सुधी मोहनो संबंध आत्मानी साथे रहेशे त्यां सुधी मारुं चित्त, बाह्य पदार्थोमां घूम्या करशे अने ज्यां सुधी चित्त घूमतुं रहशे त्यां सुधी आत्मामां सदा कर्मोनु आवागमन पण रह्या करशे. आ प्रकारे तो आत्मा सदा व्याकुळ ज रह्या करशे. माटे हे भगवान! आ नाना प्रकारना अनर्थो करनार मारा मोहने सर्वथा नष्ट करो के जेथी मारा आत्माने शान्ति थाय.

सर्व कर्मोमां मोह ज बळवान छे एम आचार्य दर्शावे छे :—

१६. **अर्थ :**—ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोमां मोह-कर्म ज अत्यंत बळवान कर्म छे. ए मोहना प्रभावथी आ मन ज्यां त्यां चंचळ बनी भ्रमण करे छे अने मरणथी डरे छे. जो आ मोह न होय तो निश्चयनय प्रमाणे न तो कोइ जीवे या न तो कोइ मरे. केम के आपे आ जगतने जे अनेक प्रकारे देख्युं छे ते पर्यायार्थिक नयनी

मोह = मोह प्रत्येनुं वलण.

अपेक्षाओ ज देख्युं छे. द्रव्यार्थिक नयनी अपेक्षाओ नहि. तेथी हे जिनेंद्र! आ मारा मोहने ज सर्वथा नष्ट करो.

पर संयोग अध्रुव जाणी तेनाथी खसी, अेक ध्रुव आत्मस्वभावमां स्थित थवानी भावना :—

१७. **अर्थ :**—वायुथी व्याप्त समुद्रनी क्षणिक जळलहरीओना समूह समान, सर्व काले तथा सर्व क्षेत्रे आ जगत क्षण मात्रमां विनाशी छे. अेवो सम्यक् प्रकारे विचार करी, आ मारुं मन समस्त संसारने उत्पन्न करनार व्यापार (प्रवृत्ति)थी रहित थइ, हे जिनेन्द्र! आपना निर्विकार परमानंदमय परमब्रह्मस्वरूपमां स्थित थवाने इच्छा करे छे.

शुभ, अशुभ उपयोगथी खसी शुद्ध उपयोगमां निवासनी भावना :—

१८. **अर्थ :**—जे समये अशुभ उपयोग वर्ते छे ते समये तो पापनी उत्पत्ति थाय छे अने ते पापथी जीव नाना प्रकारना दुःखोने अनुभवे छे, जे समये शुभ उपयोग वर्ते छे ते समये पुण्यनी उत्पत्ति थाय छे; अने ते पुण्यथी जीवने *सुख प्राप्त थाय छे. अे बंने पाप–पुण्यरूप द्वन्द्व संसारनुं ज कारण छे. अर्थात् अे बन्नेथी सदा संसार ज उत्पन्न थाय छे, किन्तु शुद्धोपयोगथी अविनाशी अने आनंदस्वरूप पदनी प्राप्ति थाय छे. हे अर्हंत प्रभो! आप तो ते पदमां निवास करी रह्या छो, पण हुं अे शुद्धोपयोगरूप पदमां निवास करवाने इच्छुं छुं.

भावार्थ :—उपयोगना त्रण भेद छे, पहेलो अशुभोपयोग, बीजो शुभोपयोग अने त्रीजो शुद्धोपयोग. तेमां पहेलां बे उपयोगथी तो

★ अनुकूळ संयोग

संसारमां ज भटकवुं पडे छे; केमके जे समये जीवनो उपयोग अशुभ हशे ते समये तेने पापनो बंध थशे अने पापनो बंध थवाथी तेने नाना प्रकारनी माठी गतिओमां भ्रमण करवुं पडशे अने जे समये उपयोग शुभ हशे ते समये ते शुभ योगनी कृपाथी तेने राजा, महाराजा आदि पदोनी प्राप्ति थशे; तेथी ते पण संसारने वधारनार छे. किन्तु, जे समये तेने शुद्धोपयोगनी प्राप्ति थशे ते समये संसारनी प्राप्ति ज थशे नहि, पण निर्वाणनी प्राप्ति ज थशे; माटे हे भगवान! हुं शुद्धोपयोगमां ज स्थित रहेवाने इच्छुं छुं.

आत्मस्वरूपनुं नास्तिथी अने अस्तिथी वर्णनः—

१९. अर्थः—जे आत्मस्वरूप-ज्योति, नथी तो स्थित अंदर के नथी स्थित बाह्य, तथा नथी तो स्थित दिशामां के नथी स्थित विदिशामां; तेम ज नथी स्थूल के नथी सूक्ष्म; ते आत्मज्योति नथी तो पुल्लिंग, नथी स्त्रीलिंग के नथी नपुंसकलिंग पण; वळी ते नथी भारी के नथी हलकी; ते ज्योति कर्म, स्पर्श, शरीर, गंध, संख्या, वचन, वर्णथी रहित छे, निर्मळ छे अने सम्यग्ज्ञानदर्शनस्वरूप मूर्ति छे; ते उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप हुं छुं, किन्तु ते उत्कृष्ट आत्मस्वरूप-ज्योतिथी हुं भिन्न नथी.

त्रिकाळी आत्मानी शक्तिः—

२०. अर्थः—हे भगवन्! चैतन्यनी उन्नतिनो नाश करनार अने विना कारणे सदा वैरी एवा दुष्ट कर्मे आपमां अने मारामां भेद पाड्यो छे. परंतु कर्मशून्य अवस्थामां जेवो आपनो आत्मा छे तेवो ज मारो आत्मा छे. आ समये ते कर्म अने हुं आपनी सामे खडा छीओ. तेथी ते दुष्ट कर्मने हठावी दूर करो; केम के नीतिमान प्रभुओनो तो ओ धर्म छे के ते सज्जनोनी रक्षा करे अने दुष्टोनो नाश करे.

भावार्थ :—हे भगवन्! जेवो अनंतज्ञान—दर्शन—सुख—वीर्य आदि गुणस्वरूप आपनो आत्मा छे तेवो ज—ते ज गुणो सहित—मारो आत्मा पण छे. परंतु भेद अेटलो ज छे के आपने ते गुणो—निर्मळ अंशो प्रगट थइ गया छे, ज्यारे मने ते गुणो प्रकट्या नथी. आ भेद पाडनार ते ज कर्म छे. केम के ते कर्मनी कृपाथी मारा आ स्वभाव पर आवरण पड्युं छे. हवे आ समये अमे बन्ने आपनी समक्ष हाजर छीअे तो ते दुष्ट कर्मने दूर करो. केम के आप त्रण लोकना स्वामी छो; अने नीतिज्ञनो धर्म छे के ते सज्जनोनी रक्षा करे तथा दुष्टोनो नाश करे.

आत्मानुं अविकारी स्वरूप :—

२१. **अर्थ** :—हे भगवन्! विविध प्रकारना आकार अने विकार करनार वादळां आकाशमां होवा छतां पण, जेम आकाशनां स्वरूपनो कांइपण फेरफार करी शकतां नथी, तेम आधि, व्याधि, जरा, मरण आदि पण मारा स्वरूपनो कांइ पण फेरफार करी शके तेम नथी. केम के अे सर्व शरीरना विकार छे, जड छे; ज्यारे मारो आत्मा ज्ञानवान अने शरीरथी भिन्न छे.

भावार्थ :—जेम आकाश अमूर्त्त छे तेथी रंग-बेरंगी वादळां तेना पर पोतानो कांइपण प्रभाव पाडी शकतां नथी तथा तेना स्वरूपनुं परिवर्तन पण करी शकतां नथी, तेम आत्मा ज्ञान-दर्शनमय अमूर्त्त पदार्थ छे तेथी तेना पर आधि, व्याधि जरा, मरण आदि पोतानां कांइपण प्रभाव पाडी शकता नथी (तथा तेना स्वरूपनुं परिवर्तन पण करी शकतां नथी). केम के ते मूर्त्त शरीरनो धर्म छे, ज्यारे आत्मा शरीरथी सर्वथा भिन्न छे.

२२. **अर्थ** :—जेम माछली पाणी विनानी भूमिपर पडतां तरफडी दुःखी थाय छे, तेम हुं पण (आपनी शीतल छाया विना), नाना

प्रकारना दुःखोथी भरपूर संसारमां सदा बळीझळी रहुं छुं. जेम ते माछली ज्यारे जळमां रहे छे त्यारे सुखी रहे छे तेम ज्यां सुधी मारुं मन आपना करुणारसपूर्ण अत्यंत शीतल चरणोमां प्रविष्ट (प्रवेशेलुं) रहे छे त्यां सुधी हुं पण सुखी रहुं छुं. तेथी हे नाथ! मारुं मन आपना चरण कमळो छोडी अन्य स्थळे के ज्यां हुं दुःखी थाउं त्यां प्रवेश न करे अे प्रार्थना छे.

२३. **अर्थः**—हे भगवन्! मारुं मन, इन्द्रियोना समूहद्वारा बाह्य पदार्थो साथे संबंध करे छे तेथी नाना प्रकारना कर्मो आवी मारा आत्मा साथे बंधाय छे; परंतु वास्तविकपणे हुं ते कर्मोथी सदाकाल सर्व क्षेत्रे जुदो ज छुं तथा ते कर्मो आपना चैतन्यथी जुदा ज छे अथवा तो चैतन्यथी आ कर्मोने भिन्न पाडवामां आप ज कारण छो; तेथी हे शुद्धात्मन्! हे जिनेद्र! मारी स्थिति निश्चयपूर्वक आपमां ज छे.

भावार्थः—यदि निश्चयथी जोवामां आवे तो हे जिनेन्द्र! आप तथा हुं समान ज छीअे. केम के निश्चयनयथी आपनो आत्मा कर्मबंध रहित छे तेम मारा आत्मा साथे पण कोइ प्रकारना कर्मोनुं बंधन रहेतुं नथी; तेथी हे भगवन्! मारी स्थिति निश्चयपूर्वक आपना स्वरूपमां ज छे.

धर्मीनी अंतर्भावनाः—

२४. **अर्थः**—हे आत्मन्! तारे नथी तो लोकथी काम, नथी तो अन्यना आश्रयथी काम; तारे नथी तो द्रव्यथी (लक्ष्मीथी) प्रयोजन, नथी तो शरीरथी प्रयोजन, तारे वचन तथा ईंद्रियोथी पण कांइ काम नथी, तेम ज *(दश) प्राणोथी पण प्रयोजन नथी; अने नाना प्रकारना विकल्पोथी पण कांइ काम नथी, केम के ते सर्व पुद्गल द्रव्यना

★ दश प्राणः—पांच इन्द्रिय, त्रण बल (मनबल, वचनबल, कायबल) आयु श्वासोच्छ्वास.

ज पर्यायो छे. वळी ताराथी भिन्न छे तोपण, बहु खेदनी वात अे छे के तुं तेमने पोताना मानी तेमनो आश्रय करे छे तेथी शुं तुं दृढ बंधनथी बंधाइश नहि? अवश्य बंधाइश.

भावार्थ:—हे आत्मन्! तुं तो निर्विकार चैतन्यस्वरूपी छो, समस्त लोक तथा शरीर, ईंद्रिय द्रव्य, वचन आदि सर्व पदार्थो पुद्‌गल द्रव्यना पर्याय छे अने ताराथी भिन्न छे, अेम होवा छतां पण, जो तुं तेमने पोताना समजी तेमनो आश्रय करीश तो तुं अवश्यमेव बंधाइश; तेथी ते सर्व परपदार्थोपरनी ममता छोडी शुद्धानंद चैतन्यस्वरूप आत्मानुं ध्यान कर के जेथी तुं कर्मोथी न बंधाय.

भेदविज्ञान द्वारा आत्मामांथी विकारनो नाश:—

२५. **अर्थ**:—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य—अे चारे द्रव्यो कोइ पण प्रकारे मारुं अहित करतां नथी; किन्तु अे चारे द्रव्यो, गति, स्थिति आदि कार्योमां मने सहकारी छे, तेथी मारा सहायक थइने ज रहे छे; परन्तु नोकर्म (त्रण शरीर, छ पर्याप्ति) अने कर्म जेनुं स्वरूप छे अेवुं तथा समीपे रहेनार अने बंधने करनार अेक पुद्‌गल द्रव्य ज मारुं वैरी छे, तेथी आ समये में तेना भेदविज्ञान तलवारथी खंडखंड ऊडावी दीधा छे. (खरो वैरी तो पोतानो अशुद्धभाव छे.)

भावार्थ:—धर्म, अधर्म, आकाश, काल अने पुद्‌गल—अे पांच द्रव्य माराथी भिन्न छे, तेमांथी धर्म, अधर्म, आकाश अने काल —अे चार द्रव्य तो मारुं कोइ प्रकारे अहित करतां नथी, परंतु मने सहाय करे छे. अर्थात् धर्म द्रव्य तो मारा गमनमां सहकारी छे, अधर्म द्रव्य स्थिति करवामां सहकारी छे, आकाशद्रव्य अवकाशदान देवामां पण मने सहकारी छे, अने कालद्रव्यथी परिवर्तन थाय छे

तेथी ते परिवर्तन करवामां पण सहकारी छे. परंतु अेक पुद्‌गलद्रव्य ज मारुं बहु अहित करनार छे. केमके पुद्‌गलद्रव्य नोकर्म तथा कर्मस्वरूपमां परिणत थइ मारा आत्मा साथे संबंध करे छे. अने तेनी कृपाथी मारे नाना प्रकारनी गतिओमां भ्रमण करवुं पडे छे तेम ज मने सत्यमार्ग पण सूझतो नथी. तेथी भेदविज्ञानरूप तलवारथी में तेना खंड–खंड ऊडावी दीधा छे.

२६. **अर्थ :**—जीवोना नाना प्रकारना रागद्वेष करनारा परिणामोथी जे प्रमाणे पुद्‌गल द्रव्य परिणमे छे ते प्रमाणे धर्म, अधर्म, आकाश अने काल—अे चार अमूर्त द्रव्यो रागद्वेष करनारा परिणामोथी परिणमता नथी, ते रागद्वेष-द्वारा प्रबळ कर्मोनी उत्पत्ति थाय छे अने ते कर्मोथी संसार ऊभो थाय छे. तेथी संसारमां अनेक प्रकारना दुःखो भोगववा पडे छे. माटे कल्याणनी इच्छा राखनार सज्ञनोअे ते राग अने द्वेष सर्वथा छोडवा जोइअे.

अर्थ :—पुद्‌गलना अनेक परिणाम थाय छे तेमां जे रागद्वेष, पुद्‌गलना परिणाम छे तेनाथी आत्मामां कर्म सदा आवी बंधाया करे अने ते कर्मोने लीधे आत्माने संसारमां परिभ्रमण करवुं पडे छे तथा त्यां तेने विविध प्रकारना दु;खो सहन करवां पडे छे. माटे भव्य जीवोअे अेवा परम अहित करनार रागद्वेषनो त्याग अवश्यमेव करी देवो जोइअे.

आनंदस्वरूप शुद्धात्मानुं ध्यान अने मनन :—

२७. **अर्थ :**—हे मन! बाह्य तथा ताराथी भिन्न जे स्त्री, पुत्र आदि पदार्थो छे तेमनामां रागद्वेषस्वरूप अनेक प्रकारना विकल्पो करी तुं शा माटे दुःखद अशुभ कर्मो फोकट बांधे छे? जो तुं आनंदरूप जळना समुद्रमां शुद्धात्माने पामी तेमां निवास करीश तो तुं निर्वाणरूप विस्तीर्ण सुखने अवश्य प्राप्त करीश. अेटला माटे, तारे आनंदस्वरूप

शुद्ध आत्मामां ज निवास करवो जोइअे अने तेनुं ज ध्यान तथा मनन करवुं जोइअे.

२८. **अर्थः**—हे जिनेन्द्र! आपना चरणकमळनी कृपाथी पूर्वोक्त वातोने सम्यक्प्रकारे मनमां विचारी जे समये आ जीव शुद्धि माटे अध्यात्मरूप त्राजवामां पग मूके छे ते ज समये, तेने दोषित बनाववाने भयंकर वैरी सामा पल्लामां हाजर छे. हे भगवन! तेवा प्रसंगे आप ज मध्यस्थ साक्षी छो.

भावार्थः—कांटाने बे छाबडा होय छे. तेमां अेक अध्यात्मरूप छाबडामां जीव शुद्धअर्थे चडे छे, ते समये बीजा छाबडामां कर्मरूप वैरी ते प्राणीने दोषी बनाववा सामे हाजर ज छे, आवा प्रसंगे हे भगवन्! आप आ बन्ने वच्चे साक्षी छो; तेथी आपे नीतिपूर्वक न्याय करवो पडशे.

हवे [१]विकल्पस्वरूप ध्यान तो संसारस्वरूप छे अने निर्विकल्प ध्यान मोक्षस्वरूप छे अेम आचार्य दर्शावे छेः—

२९. **अर्थः**—द्वैत (सविकल्पक ध्यान) तो वास्तविक रीते संसारस्वरूप छे अने अद्वैत (निर्विकल्पक ध्यान) मोक्षस्वरूप छे. संसार तथा मोक्षमां प्राप्त थती अंत (उत्कृष्ट) दशानुं आ संक्षेपथी कथन छे. जे मनुष्य पूर्वोक्त बेमांथी प्रथम द्वैतपदथी धीरे धीरे पाछो हठी [२]अद्वैतपदनुं आलंबन स्वीकारे छे ते पुरुष निश्चयनयथी नामरहित थइ जाय छे अने ते पुरुष व्यवहारनयथी ब्रह्मा, विधाता आदि नामोथी संबोधाय छे.

भावार्थः—जे पुरुष सविकल्पक ध्यान करे छे ते तो संसारमां ज भटक्या करे छे, किन्तु जे पुरुष निर्विकल्प ध्यान आचरे छे ते

१ विकल्परूप = रागद्वेष युक्त, विकार युक्त, २ निर्विकारी आत्मानुं

मोक्षमां जइ सिद्धिपदने प्राप्त करे छे; सिद्धोनुं निश्चयनयथी कोइ नाम नहि होइने ते नाम रहित थइ जाय छे अने व्यवहारनयथी तेने ब्रह्मा आदि नामथी संबोधवामां आवे छे.

३०. अर्थः—हे केवळज्ञानरूप नेत्रोना धारक जिनेश्वर! मोक्ष प्राप्त करवा अर्थे आपे जे चारित्रनुं वर्णन कर्युं छे ते चारित्र तो आ विषम कलिकामां (दुषम पंचमकालमां) मारा जेवा मनुष्य घणी कठिनताथी धारण करी शके तेम छे. परंतु पूर्वोपार्जित पुण्योथी आपमां मारी जे दृढ भक्ति छे ते भक्ति ज, हे जिन! मने संसाररूप समुद्रथी पार उतारवामां नौका समान थाओ. अथात् मने संसारसमुद्रथी आ भक्ति ज पार उतारी शकशे.

भावार्थः—कर्मोनो नाश कर्या विना मोक्ष–प्राप्ति थइ शकती नथी अने कर्मोनो नाश तो आप द्वारा वर्णित चारित्र (तप) थी थाय छे. हे भगवन्! शक्तिना अभावथी आ पंचमकालमां मारा जेवो मनुष्य ते तप करी शकतो नथी; तेथी हे परमात्मा! मारी ओ प्रार्थना छे के सद्‌भाग्ये आपमां मारी जे दृढ भक्ति छे तेनाथी मारा कर्म नष्ट थइ जाओ अने मने मोक्षनी प्राप्ति थाओ.

मोक्षपदनी प्राप्ति अर्थे प्रार्थनाः—

३१. अर्थः—आ संसारमां भ्रमण करी में ईंद्रपणुं, निगोदपणुं अने बन्ने वच्चेनी अन्य समस्त प्रकारनी योनिओ पण अनंतवार प्राप्त करी छे. तेथी ओ पदवीओमांथी कोइ पण पदवी मारा माटे अपूर्व नथी; किन्तु मोक्षपदने आपनार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌-चारित्रना औक्यनी पदवी जे अपूर्व छे ते हजी सुधी मळी नथी. तेथी हे देव! मारी सविनय प्रार्थना छे के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्रनी पदवी ज पूर्ण करो.

भावार्थः—यद्यपि, संसारमां इन्द्र आदि पदवीओ छे ते समस्त

पदवीओ पण में प्राप्त करी लीधी छे; किन्तु हे भगवन्! जे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप पदवी सर्वोत्कृष्ट मोक्षरूप सुख आपनार छे ते में हजी सुधी प्राप्त करी नथी; तेथी विनयपूर्वक प्रार्थना छे के कृपा करी मने सम्यक्‌दर्शन, सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्‌चारित्ररूपे पदवीनुं पूर्णतया प्रदान करो.

मुमुक्षुनी मोक्षप्राप्ति माटे दृढता :—

३२. **अर्थ :**—बाह्य (अतिशय आदि) तथा अभ्यंतर (केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि) लक्ष्मीथी शोभित वीरनाथ भगवाने पोताना प्रसन्नचित्तथी सर्वोच्च पदवीनी प्राप्ति अर्थे मारा चित्तमां उपदेशनी जे जमावट करी छे अर्थात् उपदेश दीधो छे ते उपदेश पासे क्षणमात्रमां विनाशी अेवुं पृथ्वीनुं राज्य मने प्रिय नथी ते वात तो दूर रही, परंतु हे प्रभो! हे जिनेश! ते उपदेश पासे त्रण लोकनुं राज्य पण मने प्रिय नथी.

भावार्थ :—यद्यपि संसारमां पृथ्वीनुं राज्य अने त्रणे लोकना राज्यनी प्राप्ति अेक उत्तम वात गणाय छे. परंतु हे प्रभो! श्री वीरनाथ भगवाने प्रसन्नचित्ते मने जे उपदेश आप्यो छे ते उपदेश प्रत्येना प्रेम पासे आ बंने वातो मने इष्ट लागती नथी, तेथी हुं आवा उपदेशनो ज प्रेमी छुं.

३३. **अर्थ :**—श्रद्धाथी जेनुं शरीर नम्रीभूत (नमेलुं) छे अेवो जे मनुष्य, श्री पद्मनन्दि आचार्यरचित आलोचना नामनी कृतिने त्रणे (प्रातः मध्याह्न सायं) काल, श्री अर्हत् प्रभु सामे भणे ते बुद्धिमान मनुष्य अेवा उच्च पदने प्राप्त थाय छे के जे पद मोटा मोटा मुनिओ चिरकालपर्यंत तपद्वारा घोर प्रयत्ने पामी शके छे.

भावार्थ :—जे मनुष्य (स्वभावना भान सहित) प्रातःकाल, मध्याह्नकाल अने सायंकाल–त्रणे काल श्री अरहंतदेव सामे

आलोचनानो पाठ करे छे ते शीघ्र मोक्ष प्राप्त करे छे. तेथी मोक्षाभिलाषीओए श्री अरहंतदेव सामे श्री पद्मनन्दि आचार्य द्वारा रचायेली आलोचना नामनी कृतिनो पाठ त्रणे काल अवश्यमेव करवो जोइए.

इति आलोचना अधिकार समाप्त

*

आलोचना संभळावनार परमकृपाळु श्री सद्गुरुदेव उपकारदर्शन

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार.
शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तु चरणाधीन.
आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास दास हुं दास छुं, आप प्रभुनो दीन.
षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यानथकी तरवारवत्, ए उपकार अमाप.
जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत.
परम पुरुष, प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज तेने सदा प्रणाम.
देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां हो! वंदन अगणित.

*

प्रणिपात स्तुति

हे परमकृपाळु देव! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखोनो अत्यंत क्षय करनारो अेवो वीतराग पुरुषनो मूळधर्म अनंतकृपा करी आप श्रीमदे मने आप्यो, ते अनंत उपकारनो प्रत्युपकार वाळवा हुं सर्वथा असमर्थ छुं, वळी आप श्रीमद् कंइ पण लेवाने सर्वथा निःस्पृह छो; जेथी हुं मन, वचन, कायानी अेकाग्रताथी आपना चरणारविंदमां नमस्कार करुं छुं.

आपनी परमभक्ति अने वीतराग पुरुषना मूळ धर्मनी उपासना मारा हृदयने विषे भवपर्यंत अखंड जाग्रत रहो अेटलुं मागुं छुं ते सफळ थाओ.

ॐ शान्ति शान्ति शान्तिः

★ गुरुदेव प्रत्ये क्षमापना–स्तुति ★

गुरुदेव! तारा चरणमां फरी फरी करुं हुं वंदना,
स्थापी अनंतानंत तुज उपकार मारा हृदयमां. १

करीने कृपादृष्टि प्रभु! नित राखजो तुम चरणमां,
रे! धन्य छे अे जीवन जे वीते शीतळ तुज छायमां. २

गुरुदेव! अविनय कंई थयो, अपराध कंई पण जे थया,
करजो क्षमा अम बाळने, अे दीनभावे याचना. ३

मन–वचन–काय थकी थया जाण्ये–अजाण्ये दोष जे,
करजो क्षमा सौ दोषनी, हे नाथ! विनवुं आपने. ४

तारी चरण सेवा थकी सौ दोष सहेजे जाय छे,
क्रोधादि भाव दूरे थई भावो क्षमादिक थाय छे. ५

गुरुवर! नमुं हुं आपने, अम जीवनना आधारने,
वैराग्यपूरित ज्ञान–अमृत सींचनारो मेघने. ६

मिथ्यात्वभावे मूढ थई निजतत्त्व नहि जाण्युं अरे!
आपी क्षमा अे दोषनी आ परिभ्रमण टाळो हवे. ७

सम्यक्त्व-आदिक धर्म पामुं, तुज चरण-आश्रय वडे,
जय जय थजो प्रभु आपनो, सौ भक्त शासनना चहे. ८

❀❀❀

सामायिक पाट

मंगलाचरण

नमोकार मंत्र

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वासाहूणं॥

अर्थ :—अरिहंतोने नमस्कार हो, सिद्धोने नमस्कार हो, आचार्योने नमस्कार हो, उपाध्यायोने नमस्कार हो, (अने) लोकमां सर्व साधुओने नमस्कार हो।★

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव!॥१॥

अन्वयार्थ :—[**देव!**] हे जिनेन्द्र देव! [**मम**] मारो [**आत्मा**] आत्मा [**सत्वेषु**] प्राणीओ प्रत्ये [**मैत्रीं**] निर्वैरबुद्धि [**गुणिषु**] गुणी जीवो प्रत्ये [**प्रमोदं**] प्रमोद भाव [**क्लिष्टेषु जीवेषु**] दुःखी जीवो प्रत्ये [**कृपापरत्वम्**] करुणाभाव (अने) [**विपरीतवृत्तौ**] विपरीत वृत्तिवाळा जीवो प्रत्ये [**माध्यस्थभावं**] माध्यस्थभाव [**सदा**] निरंतर [**विदधातु**] धारण करो।

विशेषार्थ

१. सामायिक व्रत पांचमां गुणस्थानवाळा सम्यग्दृष्टि जीवोनुं एकव्रत छे। ते शुभ भाव छे। जेओने पोताना आत्मस्वरूपनुं भान न होय तेओने साचुं सामायिकव्रत होतुं ज नथी।

२. ज्यारे सम्यग्दृष्टि जीव पोताना आत्मस्वरूपमां स्थिरता

★ आ पंच परमेष्ठीनुं विशेष स्वरूप 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथना पान २ थी पान ६ सुधीमां छे, त्यांथी जिज्ञासुओअे वांची मनन करवुं।

धारण करी शकता नथी त्यारे तेओ आ श्लोकमां कहेल चार प्रकारनी शुभ भावना भावे छे। ते समझे छे के आ भावनामां जे शुभ राग छे ते धर्म नथी पण दोष छे ने ते बंधनुं कारण छे; पण **ते ज समये सम्यग्दर्शन–ज्ञाननी जे दृढता थाय छे, अशुभ राग थतो नथी अने शुभ रागना स्वामीत्वनो नकार वर्ते छे ते धर्म छे।**

३. **मैत्रीनो अर्थ निर्वैरबुद्धि छे।** आ भावना पोताना हित माटे छे केमके ते वडे पोतानो तीव्र कषाय टळे छे। कोइ पण प्रत्ये वैरभाव राखवो ते पोतानुं ज अहित छे। एक जीव, पर जीवनुं हित के अहित करी शकतो ज नथी ए लक्षमां राखवुं अने तेथी एक जीव, बीजा जीवनो मित्र थइ शकतो नथी, पण निर्वैरबुद्धि राखी शके छे; माटे मैत्रीनो अर्थ निर्वैरबुद्धि समझवो।

४. **गुणी जीवो प्रत्ये प्रमोदभाव**—सम्यगदर्शन-ज्ञान-चारित्र धारण करनारा साचा गुणीजन छे। सम्यग्दर्शन जेने न होय ते साचा गुणी नथी; आत्मज्ञानी पुरुषो ज खरा गुणी छे। बाह्य त्याग होय पण आत्मज्ञानरूप अंतर्भेद न होय तो तेवा जीवो गुणी नथी। **धर्ममां व्यक्ति-पूजाने स्थान नथी पण गुण-पूजाने ज स्थान छे** एम आ भावना सूचवे छे। गुणीजनो प्रत्येनो प्रमोद भाव ते खरेखर पोताना गुणो वधारवा माटेनो भाव छे। जे आत्माओने सम्यग्दर्शननी रुचि होय तेमने गुणीजनो प्रत्ये खरी प्रमोद भावना होय छे। 'प्रमोद' सम्यग् गुणोनुं बहुमान सूचवे छे।

५. **दुःखी जीवो प्रत्ये करुणा**—दुःखनुं मूळ कारण मिथ्यात्व; एटले के पोताना स्वरूपनी भ्रमणा छे; ज्यांसुधी ते मिथ्यात्वने जीव टाळे नहि त्यांसुधी जीवनुं दुःख कदी टळे नहि। **सुखनुं मूळ सम्यग्दर्शन छे।** जे जीवोने सम्यग्दर्शन होय छे तेओने दुःखी (मिथ्यादृष्टि) जीवो प्रत्ये यथार्थ करुणा होय छे। आ करुणाभाव

जीव पोताना हित माटे करे छे। एक जीव कोइ पण परजीवनी करुणा करी शकतो नथी पण पोताना भाव सुधारी शके छे; वळी आटला माटे ज अरिहंत प्रभु अने सिद्ध भगवानने 'करुणासागर' कहेवाय छे। पोतानी करुणा करतां बीजा जीवोने दुःख देवानो भाव थतो नथी ते दुःखी जीवो संबंधी करुणा छे।

६. **विपरीत वृत्तिवाळा जीवो प्रत्ये मध्यस्थता**—जे जीवोने सम्यग्दर्शन प्रत्ये तद्दन अरुचि छे, मिथ्यादर्शन दृढपणे सेवे छे तथा सम्यग्दर्शनरूप आत्मकल्याणनो बोध सांभळी चीडाय छे ते जीवो वीपरीत वृत्तिवाळा छे; एवा जीवो तीव्र राग–द्वेषवाळा होय छे। ते जीवोने जोइ द्वेषभाव न आवे पण पोताने माध्यस्थभाव रहे एम अहीं सम्यग्दृष्टि भावना करे छे।

७. **सदा**—आ शब्द अेम सूचवे छे के गाथामां कहेला भावोथी विरुद्ध भावो (अशुभ भावो) मने कदी न हो। आ भावो शुभ राग छे अने शुभ राग ते विकारी भाव होवाथी हंमेशा एवा ने एवा टकी शके नहि; माटे ते टळीने मने शुद्ध भाव प्रगटो एवी अहीं ज्ञानीनी भावना छे। मिथ्यादृष्टि जीवने शुभभाव टळीने अशुभ भाव नियमथी थाय छे; केमके शुभभाव ते विकारी छे ने ते बदल्या विना रहे नहि तेथी मिथ्यादृष्टिने थयेल शुभभाव अल्पकाळमां टळीने अशुभ भाव थया विना रहेता नथी।

८. आ जीव परनुं कांइ करी शकतो नथी; जीवे पोते पोताना भाव केवा करवा ते आमां कह्युं छे। श्री मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) ना सातमां अध्यायमां शुभास्रवनुं वर्णन करतां अग्यारमां सूत्रमां '**मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु**–सत्त्व, गुणाधिक, किलश्यमान–दुःखी अने अविनयी [उद्धत, प्रकृतिधारक–मिथ्यादृष्टि]–ए जीवो प्रत्ये अनुक्रमे मैत्री, प्रमोद, कारुण्य अने

माध्यस्थ भावना भाववी' कहेल छे ते निरंतर चिंतववा योग्य छे एम पण कहेल छे।

६. सम्यग्दृष्टि जीवो ज्यारे पोताना स्वरूपमां स्थिर टकी शके नहि त्यारे तेमनुं लक्ष पर तरफ जाय छे अने तेम थतां पोतामां अशुभ भावो न थवा देवा माटे केवा भावोनी भावना करे छे ते श्लोकमां कह्युं छे। ते भावोमां पर जीवो तो निमित्त मात्र छे; पर जीवोनुं कांइ करवानुं कहेल छे एवो आ श्लोकनो अर्थ करवो ते न्यायविरुद्ध छे; केमके एक द्रव्य बीजा द्रव्यनुं कांई करी शकतुं नथी। ज्ञानी जीव सरागदशामां पोतानुं लक्ष पर तरफ जतां केवी भावना करे छे ते ज आ श्लोकमां जणाव्युं छे।१।

सम्यग्दृष्टि जीव स्व तरफ वळे त्यारे तेमनुं चिंतवन केवुं होय ?

शरीरतः कर्त्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खडगयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥

अन्वयार्थ :—[**जिनेन्द्र!**] हे जिनेन्द्रदेव! [**अनन्तशक्तिः**] अनंत शक्तियुक्त [**अपास्त दोषम्**] दोष रहित—परिपूर्ण [**आत्मानम्**] आत्माने [**कोषादिव खडगयष्टिं**] म्यानथी जुदी तरवारनी जेम [**शरीरतः**] शरीरथी [**विभिन्नम्**] तद्दन जुदो [**कर्तृम्**] करवानी —अनुभववानी [**शक्तिं**] शक्ति—ताकात [**तव**] आपनी [**प्रसादेन**] कृपावडे [**मम**] मने [**अस्तु**] हो—प्राप्त थाओ।

विशेषार्थ

१. आत्मा चैतन्य स्वरूप छे अने शरीर जड छे; जो के तेओ एक क्षेत्रे कह्यां छे तो पण जुदां छे; जो तेओ खरेखर जुदां न होय तो कदी पण जुदां थइ शके नहि। जेम तरवार म्यानथी जुदी

ज छे तेथी तेने म्यानमांथी जुदी पाडी शकाय छे, तेम आत्मा शरीरथी जुदो होवाथी आत्माना ज्ञानबळ वडे बन्नेनुं स्वरूप जाणीने जीवने शरीरथी जुदो करी शकाय छे; अहीं ते ज्ञानबळ प्रगट करवानी भावना छे।

२. शरीर अनंत पुद्‌गल परमाणुओनो पिंड छे, ते अचेतन छे; आत्मा तेनुं कांई करी शके नहि; जीव अने शरीर तद्दन जुदां पदार्थो छे एम जे न समझे तेने धर्मनी शरुआत थइ शके नहि; द्रव्ये, क्षेत्रे, काळे अने भावे जुदां पदार्थो, एक–बीजानुं कांइ करी शके नहि, शरीरनुं हुं काई करी शकुं के शरीरनी क्रिया करवाथी सामायिक वगेरे थाय एम जे माने छे तेणे जीवने अने शरीरने जुदां ज मान्या नथी; तेथी ते जीवने धर्म के सामायिक होई शके नहि अने तेने जीव अने शरीरनी विभिन्नता कदी थाय नहि। शरीरनो दरेक रजकण स्वतंत्र द्रव्य छे अने जीव पण स्वतंत्र द्रव्य छे तेथी जीव शरीरनुं कांई करी शके नहि, रजकणो जीवनुं कांई करी शके नहि अने एक रजकण बीजा रजकणनुं कांइ करी शके नहि; कोइ पण द्रव्य अन्य द्रव्यने लाभ–नुकसान करी शकतुं नथी।

३. वाटे जता जीवो सिवायना दरेक संसारी जीवने मुख्यपणे त्रण शरीर होय छे; मनुष्योने कार्मण, तैजस अने औदारिक–ए त्रण शरीर होय छे, कोइ लब्धिधारी मुनिने चोथुं आहारक शरीर होय छे। आ शरीरोमांथी कोइ पण शरीर जीवने कांइ लाभ के नुकसान करतुं ज नथी; केमके ते जीवथी जुदुं ज द्रव्य छे; आवुं साचुं ज्ञान प्रथम करवानी जरूर छे। आवुं ज्ञान कर्या वगर जीवनो पुरुषार्थ कदी पोताना तरफ वळे ज नहि अने पर संयोग तरफ ज वलण रह्या करे; तेथी तेने आत्मभावना जागे नहि।

माटे शरीर वगेरे पर पदार्थो तरफथी लक्ष खेंची लई, शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप पोताना आत्मा तरफ वलण करवाना अभ्यासरूप आ भावना छे।

४. **आपना प्रसादथी**—आ शब्दो एम सूचवे छे के जीव सम्यग्दर्शन पामे छे तेमां वीतरागी उपदेश निमित्त होय छे; अज्ञानीनो उपदेश तेमां निमित्त कदी होय ज नहि। वीतरागी पुरुष के वीतरागी उपदेश आत्मानुं स्वरूप समझवामां कांइ मदद के कृपा करे छे एम मानवुं ते अयथार्थ छे। वीतरागी पुरुष अने तेनो उपदेश बन्ने पर द्रव्य छे तेथी ते आत्माने लाभ करी शके नहि; पण सम्यग्दर्शन पामवामां वीतरागी उपदेश ज निमित्त होई शके एवुं ज्ञान कराववा अने सम्यग्दृष्टिने राग होय त्यां सुधी वीतराग प्रभुनुं बहुमान वर्ते छे एटलुं बतावvा माटे आ श्लोकमां **'तव-प्रसादेन'** आपना प्रसादथी—कृपाथी' एवुं पद वपरायेलुं छे-।२।

सम्यग्दृष्टि जीवनी बहारना संयोग--वियोग प्रत्येनी भावना :—

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भुवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ।।३।।

अन्वयार्थ :—[नाथ !] हे नाथ ! [**दुःखे–सुखे**] दुःखमां— अगवडमां, (के) सुखमां [**वैरिणि–बन्धुवर्गे**] वैरी प्रत्ये के बंधु वर्ग तरफ, [**योगे–वियोगे**] संयोगमां के वियोगमां (अने) [**भवने वा वने**] घरमां के जंगलमां [**निराकृत अशेष ममत्वबुद्धेः**] संपूर्ण ममत्वबुद्धि छोडीने [**मे**] मारुं [**मन**] मन [**सदा**] सदाय [**समं**] समभावी [**अस्तु**] हो--रहे।

विशेषार्थ

१ लोको बाह्य सगवडने सुख अने बाह्य अगवडने दुःख माने

छे। आत्मज्ञानी एम माने छे के शरीर वगेरे बीजा कोई परपदार्थो जीवने सगवड–अगवड के सुख-दुःख आपता नथी; मात्र कल्पना करीने तेमां सगवड–अगवडनो आरोप अज्ञानी जीव करे छे। ज्ञानी तो पोताना शुद्धभावने सुख–सगवडरूप माने छे अने शुभ–अशुभ भावोने दुःख अगवडरूप माने छे। कोई पण पर जीव आ आत्मानो शत्रु के मित्र छे ज नहि; मात्र पोतानो शुद्ध भाव ते मित्र अने अशुद्ध-शुभाशुभ भाव ते वैरी छे। जड-चेतननो संयोग के वियोग ते तो ज्ञेय मात्र छे। खरी रीते तो कोइ जड-चेतननो संयोग-वियोग थतो नथी; केमके दरेक द्रव्य पोतपोताना (स्व) क्षेत्रमां ज रहे छे। ते द्रव्यो स्वयं पोताना कारणे आकाश क्षेत्र बदलावे छे अने ए रीते पर द्रव्यनुं क्षेत्र बदलावाथी आ जीवने कांइ लाभनुकसान थतुं नथी पोतपोताना स्वभावमां जोडाइ रहे एटले के शुद्ध भाव (एकाकार रूप) प्रगट करे अने पोतानामांथी अशुद्ध भावोनो वियोग करे ए ज जीवने लाभनुं कारण छे; अहीं ए ज भावना छे। घर हो के जंगल हो ते बन्ने पर वस्तु छे; ते कोइ जीवने लाभ-नुकसान करता नथी एम ज्ञानी जाणे छे।

२. वस्तु-स्वरूपनी साची मान्यता थया पछी सम्यग्दृष्टि जीव ऊपर मुजबनी भावना करे छे। साधक दशामां तेनो राग क्रमे-क्रमे टळे छे; ज्यां सुधी राग रहे छे त्यां सुधी पर तरफ लक्ष जाय छे, तेथी ते राग तोडीने, लक्षने स्व तरफ वाळीने, निर्विकल्प रागरहित दशा प्रगट करवानी आ भावना छे; आमां सदाय माटे वीतरागतानी भावना करी छे।

३. आ श्लोकमां **'अशेष'** शब्द वापर्यो छे ते एम सूचवे छे के अभिप्रायमांथी तो पर द्रव्य संबंधी ममत्वबुद्धि टळी गइ छे पण चारित्रमां कांइक अंशे ममत्व रह्युं छे ते टळी जाओ एवी भावना अहीं करी छे।

४. आ श्लोकमां **'सदापि**–सदाय' शब्द वापर्यो छे तेनो अर्थ पहेला श्लोकनी टीकामां जणाव्यो छे ते मुजब अहीं समझवो। ३।

मारुं लक्ष सदाय ज्ञान तरफ ज रहो एवी भावना :—

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निषातविव बिम्बिताविव।
पादौत्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव॥४॥

अन्वयार्थ :—[**मुनीश**] हे मुनिओना स्वामी–जिनेश! [**त्वदीयौ पादौ**] आपना बन्ने चरण कमळ [**मम**] मारा [**हृदि**] हृदयमां [**सदा**] हमेशा (एवी रीते) [**तिष्ठताम्**] रहो के [**लीनौ इव**] जाणे लीन थयां होय, [**कीलितौ इव**] (खीला माफक) जाणे जडाई गयां होय [**स्थिरौ इव**] जाणे स्थिर थई गयां होय [**निषातौ इव**] जाणे बेसाडी दीधां होय [**बिम्बितौ इव**] जाणे बिंबसमान बनी गया होय [**तमोधुनानौ**] जाणे मोह–अंधकारने दूर करवा लायक [**दीपकौ इव**] दीपक समान बनी गयां होय!

विशेषार्थ

१. आ श्लोकमां पोताना शुद्ध स्वरूपमां एकाकारपणे लीन थवानी भावना छे। अहीं जिनेन्द्र देवने उद्देशीने निमित्तथी कथन कर्युं छे; केमके सम्यग्दृष्टिने ज्यारे स्वरूपमां स्थिरता न होय त्यारे राग होय छे अने ते रागने लीधे तेनुं लक्ष भगवान आदि ऊपर जाय छे अने ते वखते विनयपूर्वक पोताना स्वरूप तरफ वळवानी भावना करे छे। भगवान तो पर द्रव्य छे तेथी तेमना चरणकमळ कोइ बीजा जीवमां प्रवेश करे, स्थिर थाय के एकरूप थाय के दीपक समान बनी जाय एम बने नहि। पण सम्यग्दृष्टि जीवो निज स्वरूपमां लीन थवा, स्थिर थवा, समाइ जवा के बिंबरूप थवा

इच्छे छे तेथी भगवान प्रत्येना बहुमानना कारणे उपचारथी कथन कर्युं छे।

२. **सदा** लीन थवानी भावना अहीं करी छे ते एम बतावे छे के ज्ञानीने शुभ भाव राखवानी भावना नथी पण ते छेदीने शुद्ध भावमां लीन थवानी भावना छे।

३. आ श्लोकमां '**तमः** मोह-अंधकार' शब्द वापर्यो छे ते एम सूचवे छे के मिथ्यादर्शन अने मिथ्याचारित्ररूप मोह टाळवामां भगवाननुं वीतरागी विज्ञान ज निमित्त होई शके; अज्ञानीओनुं ज्ञान मिथ्या होवाथी धर्ममां ते कदी पण निमित्त थइ शके नहि।

४. सर्वज्ञ वीतराग देवना द्रव्य-गुण-पर्यायनुं स्वरूप यथार्थपणे जे न जाणे तेनो मिथ्यात्वदर्शन अने मिथ्यात्वचारित्र रूप मोह कदी टळे नहि अने जे यथार्थपणे जाणे तेनो मोह टळ्या वगर रहे नहि एम आ श्लोक सूचवे छे।

५. लीन, कीलित, स्थिर, निषात अने बिम्बित–शब्दो सम्यक् चारित्रनी दृढता करवानी भावना सूचवे छे।४।

पूर्वे करेल प्रमादनुं प्रायश्चित :-

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥५॥

अन्वयार्थ :—[**देव!**] हे जिनेन्द्र प्रभु! [**प्रमादतः**] प्रमादपूर्वक [**इतः**] अहीं [**ततः**] तहीं [**संचरता**] फरता–हरता थका [**एकेन्द्रियाद्याः**] एकेन्द्रिय आदि [**देहिनः**] प्राणीओ [**यदि**] जो [**क्षताः**] हणाया होय, [**विभिन्नाः**] शरीरथी भिन्न कराया होय, [**मिलिता**] एक बीजामां भेगां कराया होय (के) [**निपीडिताः**]

पीडाया होय [**तदा**] तो [**तत्**] ते [**दुःअनुष्ठितं**] दुष्कृत्य [**मिथ्या**] मिथ्या [**अस्तु**] हो–थाओ।

विशेषार्थ

१. आ श्लोकमां '**प्रमादतः**–प्रमादथी शब्द घणो उपयोगी छे; केम के प्रमाद ज भावहिंसा छे अने भावहिंसा ए ज दोष छे। परजीवनुं शरीर छूटे के न छूटे, तेमना कटका थाय के न थाय ते आ जीवने आधीन नथी। आ जीवने आधीन पोताना भावो छे। पोताना भावमां प्रमाद थाय ते ज पोतानुं भावमरण होवाथी हिंसा छे अने ते दुष्कृत्य होवाथी ते मिथ्या थाओ एवी भावना करी छे।

२. पर जीवनुं जीवन के मरण तेना आयुष्यने आधीन छे अने तेना आयुष्य प्रमाणे ज जीवनुं जीवन-मरण थाय छे; माटे पर जीवना जीवन के मरण, सुख के दुःख वगेरे आ जीवने बंधना कारण नथी, परंतु पोताना विकारी भाव ज बंधनुं कारण छे।

३. श्री जिनेन्द्रदेवे प्ररूपेल भावहिंसानुं स्वरूप ज खरी हिंसा छे लोको जेने हिंसा कहे छे ते हिंसानुं खरुं स्वरूप नथी। जीव पोताना भावमां प्रमाद सेवे छे ते ज हिंसा छे। जीवनी प्रमाद दशानुं निमित्त पामीने बीजा जीवोने दुःख थाय छे अने तेमना शरीरनो वियोग थाय छे ते द्रव्यहिंसा छे; बंधनुं कारण भाव हिंसा ज छे, द्रव्यहिंसा नथी। भाव हिंसा वखते द्रव्यहिंसा थाय तो तेने निमित्त कारण कहेवाय।

४. जे जीव आत्मानुं शुद्ध स्वरूप समझे ते ज दुष्कृत्य शुं छे ते समझी शके।५।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र संबंधी दोषोनुं प्रायश्चित :—

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकाहरि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

अन्वयार्थ :—[**प्रभो !**] हे प्रभु ! [**विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना**] मोक्षमार्गथी प्रतिकूल वर्तन करनार [**मया**] मारा वडे [**दुर्धिया**] दुर्बुद्धिद्वारा [**कषाय–अक्षवशेन**] कषाय अने इन्द्रिय वश [**चारित्रशुद्धे**] चारित्र–शुद्धिनुं [**यद्**] जे [**अकारिलोपनं**] लोपन कर्युं होय [**तद्**] ते [**मम**] मारुं [**दुष्कृतं**] दुष्कृत्य [**मिथ्या**] मिथ्या [**अस्तु**] हो—थाओ।

विशेषार्थ

१. जे जीव यथार्थ मोक्षमार्ग समझे ते ज मोक्षमार्गथी प्रतिकूळ शुं छे ते समझी शके; माटे आत्मार्थीओए शुभ रागने मोक्षमार्ग नहि मानतां निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपे मोक्षमार्ग समझवो जोइए।

२. कषायनो अर्थ मिथ्यादर्शन, अज्ञान अने राग-द्वेष थाय छे; माटे अज्ञान दशामां जे राग-द्वेष सेव्यां होय ते तथा सम्यग्दर्शन प्रगट थया पछी जे राग-द्वेष कर्यां होय ते दुष्कृत्य मिथ्या थाओ एवी अहीं भावना छे।

३. पोते आत्मलक्ष चूकीने इन्द्रियोने वश थयो हतो अने तेथी राग द्वेषादि दुष्कृत्य कर्यां हतां तेनुं अहीं प्रायश्चित छे। जड इन्द्रियो जीवने कांई गुण–दोष के लाभ-नुकसान करती नथी पण जीव पोते ते तरफ वलण करे छे ते ज दुष्कृत्य छे। आत्मानुं स्वरूप समज्या विना कोई आत्मा साचो जितेन्द्रिय थई शके नहि; केमके अज्ञानी जीव इन्द्रियोथी पोताने दुःख थाय छे एम माने

छे तेथी ते त्याग द्वेषपूर्वक ज होय छे अने तेने दुष्कृत्यनो साचो त्याग होतो नथी।

४. शुद्धभाव ते सुकृत्य छे; पुण्य अने पाप ए बन्ने भावो दुष्कृत्य छे।६।

सर्व पापोनी आलोचना–निंदा–गर्हा :—

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम्।।७।।

अन्वयार्थ :—[**भिषग्**] वैद्य [**मंत्रगुणैः**] मंत्र गुणो वडे [**विषं**] विषे (दूर करे छे ते) [**इव**] माफक [**अहम्**] हुं [**भवदुःखकारणम्**] भव दुःखना कारणरूप [**मनःवचःकायकषायनिर्मित**] मन, वचन अने कायना निमित्ते कषाय द्वारा उत्पन्न करेला [**अखिल**] समस्त [**पाप**] पाप [**विनिन्दन आलोचन गर्हणैः**] विशेष, निन्दा, आलोचना अने गर्हणावडे [**निहन्मि**] नाश करुं छुं।

विशेषार्थ

१. मन, वचन अने काया पुद्‌गलपिंड छे; तेओ जीवने कांइ लाभ के नुकसान करतां नथी; पण ज्यारे जीव पोते पोताना दोषना कारणे ते तरफ लक्ष करे छे त्यारे पोतानामां विकार थाय छे। पर-लक्ष विना विकार थाय नहि; ज्यारे विकार करे त्यारे क्यांक–पर उपर लक्ष होय ज छे। विकार वखते जीवे कइ पर वस्तु ऊपर लक्ष कर्युं तेनुं ज्ञान कराववा माटे मन, वचन के काया वडे विकार कर्यो एम कहेवाय छे; आ कथन व्यवहारनुं छे। व्यवहार-कथन, निमित्तनुं ज्ञान कराववा माटे कहेवामां आवे छे। मन, वचन, काय तो निमित्त मात्र छे; तेमना कारणे विकार थतो नथी।

२. कषायनो अर्थ छठ्ठा श्लोकमां कहेवामां आव्यो छे; मिथ्यात्व ते उत्कृष्ट पाप छे, केमके ते अपरिमित मोह छे। चारित्रनो दोष (राग-द्वेष) तो परिमित मोह छे। अज्ञानीना कषायमां मिथ्यात्वनो समावेश थई जाय छे,

३. आ श्लोकमां आपेल वैद्यनुं दृष्टान्त खास लक्षमां राखवा योग्य छे। सम्यग्दर्शन ज विकार-रोगने टाळवा माटे प्रथम मंत्र (गुण) छे। अने सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकनुं चारित्र ते विकारनो सर्वथा नाश करवानो बीजो मंत्र छे। आ सिवाय बीजो कोई उपाय जीवना विकार टाळवा समर्थ नथी।

४. **निंदा**-आत्मसाक्षीए पोताना दोषोने प्रकट करवा।

आलोचना-पोतामां लागेला दोषोने जोई जवा।

गर्हणा--पंच परमेष्ठी के गुरुसाक्षीए पोताना दोषो प्रकट करवा।

५. भवदुःखना कारणरूप महापाप ते मिथ्यादर्शन छे; ते टाळीने, चारित्रमां स्थिरता करी, रागरूप मोह टाळवानी अहीं भावना छे। केमके रागना क्षय विना सर्वज्ञता अने वीतरागता प्रकटे नहि अने ते प्रकट्या विना भवनो आत्यंतिक नाश थाय नहि।७।

अतिक्रम वगेरे दोषोनुं प्रतिक्रमण :—

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्म्मणः।
व्यधादनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥८॥

अन्वयार्थ :—[**जिन**] हे जिनेश्वर देव! [**विमतेः प्रमादतः**] विमतिना प्रमाद द्वारा [**सुचरित्रकर्म्मणः**] सम्यक्चारित्रक्रियाना [**व्यघात**] भंगथी [**यत्**] जे [**अतिक्रमं**] अतिक्रम, [**व्यतिक्रमं**]

व्यतिक्रम, [**अतिचारं**] अतिचार [**अनाचारम्**] अनाचार [**अपि**] पण (कर्यां होय) [**तस्य**] तेनी [**शुद्धये**] शुद्धि अर्थे [**प्रतिक्रमं**] प्रतिक्रमण [**करोमि**] करुं छुं।

विशेषार्थ

१. सम्यग्दृष्टि जीवने ज साचुं सामायिक होय छे; आ श्लोकमां जणावेल प्रतिक्रमणनी भावना सम्यग्दृष्टिनी छे। मुमुक्षु जीवोए प्रथम आत्मभानवडे मिथ्यात्वनुं प्रतिक्रमण करवुं जोइए, एटले के सम्यग्दर्शन प्रगट करवुं जोइए। **सम्यग्दर्शन ए ज मिथ्यादर्शनरूप महापापनुं प्रतिक्रमण छे।** त्यारपछी सम्यक्चारित्रना दोषो टाळीने स्वरूपमां स्थिर रहेवुं ते चारित्रना दोषोनुं प्रतिक्रमण छे।

२. प्रतिक्रमणनो अर्थ मिथ्यात्व आदि दोष (थी पाछाफरी—)नो त्याग करी निज स्वरूप प्रगट करवुं ते छे।

अतिक्रम आदि शब्दोना अर्थ हवे पछीना श्लोकमां कह्या छे:—

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्ताम्॥६॥

अन्वयार्थ:—[**प्रभो!**] हे प्रभु! [**मनःशुद्धिविधेः**] मनः शुद्धिना विधिनी [**क्षतिं**] क्षति—विकार भाव ते [**अतिक्रमं**] अतिक्रम, [**शीलवृतेः विलंघनम्**] शील व्रतोना उल्लंघननो भाव ते [**व्यतिक्रम**] व्यतिक्रम, [**विषयेषु वर्तनं**] विषयोमां प्रवृत्ति ते [**अतिचारं**] अतिचार (अने) [**इह**] आ विषयोमां [**अतिसक्ताम्**] अति आसक्ति ते [**अनाचारं**] अनाचार छे—एम [**वदन्ति**] आचार्य देवो कहे छे।

विशेषार्थ

आ श्लोकमां कहेल चारे प्रकारो अशुभ भाव छे। प्रथम त्रण

प्रकारना दोषो थवा छतां जीवनो एटलो पुरुषार्थ टकी रहे छे के सम्यगदर्शन अने व्रतनो भंग थइ जतो नथी। पण चोथो दोष मोटो छे; ते दोष लागतां जीवना व्रतमां भंग थाय छे अने जो सत्य श्रद्धामांथी जीव खसी जाय तो ते मिथ्यादृष्टि थइ जाय छे अने तेथी तेनां सम्यग्दर्शन अने व्रत बन्ने नष्ट थाय छे।९।

वचनना निमित्ते जीवे करेला दोषोनी क्षमा :—

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किंञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम्॥१०॥

अन्वयार्थ :—[देवी सरस्वती] हे सरस्वती जिनवाणी देवी! [**यदि**] जो [**प्रमादात्**] प्रमादथी [**यद्**] जे [**अर्थमात्रापदवाक्यहीनं**] (जिन वचनोना अर्थ, मात्रा, पद, वाक्यथी हीन (ओछुं) [**किञ्चन**] कांइपण [**मया**] माराथी [**उक्तं**] बोलायुं होय [**तत्**] ते [**क्षमित्वा**] माफ करीने [**मे**] मने [**केवलबोधलब्धिम्**] केवलज्ञाननी प्राप्ति [**विदधातु**] धारण करावो।

विशेषार्थ

१. सम्यग्ज्ञाननुं निमित्त जिनवाणी ज होय; सम्यग्ज्ञाननुं प्रथम निमित्त अज्ञानीनी वाणी कदी होइ शके नहि; सम्यग्ज्ञानी पोताना शुद्धोपयोगमां स्थिर रही शकता नथी त्यारे तेओ ज्ञाननी विशेष निर्मळता माटे जिनवाणीनुं श्रवण, वांचन अने मनन करे छे।

केवलज्ञानने अने सम्यक्, श्रुतज्ञानने पण सरस्वती देवी कहेवामां आवे छे। श्रुतज्ञानपूर्वक केवळज्ञान थाय छे, तेथी ज्ञानी सराग अवस्था टाळीने पोताना शुद्धोपयोगमां स्थिर थइ केवलज्ञान प्रकट करवानी भावना करे छे एम आ श्लोकमां दर्शाव्युं छे।

२. जिनवाणी पर वस्तु छे। ते आत्माने कांई लाभ—नुकसान करी शके नहि; पण जीवने ज्यारे सम्यग्ज्ञान प्रथम थाय त्यारे जिनवाणी निमित्तरूप होय छे एवुं ज्ञांन करांववा माटे आ श्लोकमां व्यवहारथी कथन कराव्युं छे।

३. **जे सम्यग्ज्ञान छे ते ज सरस्वतीनी सत्य मूर्ति छे;** तेमां पण संपूर्ण ज्ञान केवळज्ञान छे—के जेमां सर्व पदार्थो प्रत्यक्ष भासे छे—ते, अनंत धर्मयुक्त आत्मतत्त्वने प्रत्यक्ष देखे छे; तेथी ते सरस्वतीनी मूर्ति छे। तद्नुसार जे श्रुतज्ञान छे ते आत्मतत्त्वने परोक्ष देखे छे तेथी ते पण सरस्वतीनी मूर्ति छे। वळी वचनरूप द्रव्यश्रुत पण तेनी मूर्ति छे। कारण के वचनो द्वारा अनेक धर्मयुक्त आत्माने ते बतावे छे।

आ रीते सर्व पदार्थोना तत्त्वने जणावनार ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकांतमयी सरस्वतीनी मूर्ति छे। सरस्वतीना नाम वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी, वागेश्वरी, वाग्देवता, शंकरी इत्यादि घणां छे।

४. लौकिकमां जे सरस्वतीनी मूर्ति प्रसिद्ध छे ते यथार्थ नथी। १०।

जिनवाणीरूप सरस्वतीना निमित्त बोधि आदिनी प्राप्ति :—

बोधिः समाधि परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि।।१६।।

अन्वयार्थ :—[देवि] हे सरस्वती—जिनवाणी देवी! (तुं) **[चिन्तितवस्तुदाने]** चिंतवेली वस्तुनुं दान करवामां **[चिन्तामणि]** चिन्तामणि छो। (तेथी) **[त्वां वंद्यमानस्य]** तने वंदन करता एवा **[मम]** मने **[बोधिः]** रत्नत्रयनी प्राप्तिरूप धर्म, **[समाधिः]**

आत्मलीनतारूप समाधि, [**परिणामशुद्धिः**] परिणामोनी शुद्धता [**स्वात्म–उपलब्धिः**] निज आत्मस्वरूपनी प्राप्ति (अने) [**शिवसौख्य-सिद्धिः**] मोक्ष सुखनी सिद्धि [**अस्तु**] थाओ।

विशेषार्थ

१. आ श्लोकमां जिनवाणीनुं माहात्म्य वर्णव्युं छे अने निज स्वभावनी भावना करी छे; जिनवाणीनुं माहात्म्य व्यवहारनये छे। निश्चयनये (खरी रीते) आत्माना सम्यग्ज्ञाननुं माहात्म्य छे। जीव ज्यारे सम्यग्दर्शनादि प्रकट करे छे त्यारे जिनवाणी ऊपर निमित्त तरीकेनो आरोप आवे छे, तेथी जिनवाणी निमित्त कहेवाय छे। मुमुक्षुओने राग होय त्यारे जिनवाणी तरफ लक्ष जतां तेनुं माहात्म्य आव्या वगर रहेतुं नथी; पण पोताना त्रिकाळी शुद्ध स्वरूप तरफ लक्ष करतां सम्यग्दर्शन प्रगटे छे अने त्यारपछी क्रमेक्रमे राग टाळीने जीव विशेष स्वरूपलीनता करे छे।

२. **चिंतववा लायक वस्तु एक शुद्धात्म ज छे।** तेनुं स्वरूप जिनवाणी द्वारा ज जाणी शकाय छे एम अहीं बताव्युं छे।

३. सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र जे अप्राप्य हतां तेनी प्राप्ति ते बोधि छे। अने तेमनुं निर्विघ्नपणे भवांतरमां साथे लइ जवुं ते समाधि छे।

हवे छ गाथामां देवाधिदेवनी स्तुति करवामां आवे छेः—

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दै—र्यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१२॥

अन्वयार्थः—[**यः**] जे [**सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः**] सर्व मुनीश्वरोना समूहो वडे [**स्मर्यते**] याद कराय छे–स्मराय छे, [**यः**] जे [**सर्व नर–अमर–**

इन्द्रैः] सर्व मनुष्य, चक्रवर्ती, देव अने इन्द्रोवडे [**स्तूयते**] स्तवाय छे, [**यः**] जे [**वेदपुराणशास्त्रैः**] द्वादशांगरूप वेद–पुराण आदि शास्त्रो वडे [**गीयते**] गवाय छे [**सः**] ते [**देवदेवः**] देवाधिदेव [**मम**] मारा [**हृदये**] हृदयमां [**आस्ताम्**] बिराजमान थाओ।

विशेषार्थ

१. जे आत्मा निजस्वरूप समझे ते ज परमात्मानुं सत्यस्वरूप समझी शके अने ते ज तेमनी स्तुति करी शके। आ श्लोकमां कहेल स्तुति व्यवहारनये छे, एटले के ते शुभ रागरूपे छे।

२. परमात्मानी निश्चय स्तुतिनुं स्वरूप श्री समयसारनी गाथा '३१' थी '३३' मां अने तेनी टीकामां कह्युं छे त्यांथी समझी लेवुं।

३. आत्माना स्वरूपनुं जेने भान होतुं नथी तेने व्यवहार–स्तुति पण होती नथी; तेवाओना शुभभाव ते व्यवहाराभासी स्तुति छे।

४. वेदनो अर्थ शास्त्रज्ञान छे; चार अनुयोगने वेद कहेवामां आवे छे। प्रथमानुयोगने पुराण कहेवामां आवे छे। बाकीना त्रण (करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग)ना कथनने शास्त्रो कहेवामां आवे छे।१२।

देवाधिदेव–परमात्मानी स्तुति चालु :—

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्तसंसारविकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये मास्ताम्॥१३॥

अन्वयार्थ :—[**यः**] जे [**दर्शनज्ञानसुखस्वभावः**] अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान अने अनंत सुख–स्वभावना धारक छे, [**समस्तसंसार-**

विकारबाह्यः] समस्त संसारी विकारी भावोथी पर छे, [**समाधिगम्यः**] अभेद रत्नत्रयरूप निर्विकल्प समाधिद्वारा गम्य छे, [**परमात्मसंज्ञः**] परमात्मा संज्ञाथी प्रसिद्ध छे [**सः**] ते [**देवदेवः**] देवाधिदेव [**मम**] मारा [**हृदये**] हृदयमां [**आस्ताम्**] बिराजमान थाओ।

विशेषार्थ

आ श्लोकमां 'पोताना शुद्ध पूर्ण स्वभावरूप परमात्मानी प्राप्तिनी भावना छे। ज्यां भगवान बिराजमान होय त्यां पाखंड होय नहि। मिथ्यात्व मोटामां मोटुं पाखंड छे; तेने जे जीव टाळे ते ज पोताना शुद्ध पर्यायो प्रगट करी शके। भगवान तो वीतराग छे। पुण्यभाव पण तेमने नथी; तेथी भगवाननो भक्त प्रशस्त राग अर्थात् पुण्य भावने धर्म के धर्मनो सहायक माने नहि; तेनी दृष्टिमां रागनो आदर होय ज नहि। साधक अवस्थामां जीवने राग थाय खरो पण भगवाननो भक्त तेने धर्म मानतो नथी, तेथी ते, रागनो अल्पकाळमां नाश करशे, रागथी अर्थात् पुण्यथी धर्म थाय के पुण्यधर्ममां सहायक थाय एवी जेने मान्यता होय ते भगवाननी खरी स्तुति के भक्ति करता नथी पण मिथ्यात्वनी स्तुति के भक्ति करे छे; अज्ञानना कारणे ते–पोते भगवाननी स्तुति के भक्ति करे छे एम माने छे। १३।

देवाधिदेवनी स्तुति चालु :—

निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालं।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।।१४।।

अन्वयार्थ :—[**यः**] जे [**भवदुःखजालं**] भवरूप दुःखनी जाळनो [**निषूदते**] विध्वंस करे छे [**यः**] जे [**जगत् अन्तरालं**] जगतनी भीतरमां रहेली वस्तुने [**निरीक्षते**] निरीक्षण करे छे–सूक्ष्मपणे जुए छे,

[**यः**] जे [**अन्तर्गतः**] अंतरंगमां प्राप्त छे, [**योगिभिः**] योगियोवडे [**निरीक्षणीयः**] सूक्ष्मपणे देखावा योग्य छे [**सः**] ते [**देवदेवः**] देवाधिदेव [**मम**] मारा [**हृदये**] हृदयमां [**आस्ताम्**] बिराजो।

विशेषार्थ

१. पोताना शुद्ध स्वरूपनी प्राप्तिने उपचारथी देवाधिदेवनी प्राप्ति कहेवामां आवे छे। तीर्थंकर देव पर छे; तेओ कांइ बीजा जीवोमां प्रवेश करी शके नहि, पण तेमनो भाव अने पोतानो भाव एक ज प्रकारनो थाय ते तीर्थंकर देवनी अंतरंग प्राप्ति छे।

२. जेओ पोताना स्वरूपने ओळखी पोतामां लीन रहे छे ते 'योगी' कहेवाय छे।

३. भव ते ज दुःखनी जाळ छे; **आत्माना स्वरूपमां भव नथी; तेथी सम्यग्दृष्टिने भवनी शंका थाय नहि।** सम्यग्दर्शन थतां संसारचक्र टळी जाय छे। भय ते जीवनो विकारभाव छे; सम्यग्दृष्टि जीवोने ते विकारना स्वामित्वनो नकार छे तेथी अल्पकाळमां ज तेनी मुक्ति थाय छे। ज्यां मिथ्यात्व होय त्यां भव होय ज। सम्यग्दर्शन होय त्यां भवभ्रमण कदी होय ज नहि।१४।

देवाधिदेवनी स्तुति चालु :—

विमुक्तितमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१५॥

अन्वयार्थ :—[**यः**] जे [**विमुक्तिमार्गप्रतिपादकः**] मोक्षना प्रतिपादक छे, [**यः**] जे [**जन्ममृत्युव्यसनात्**] जन्म—मरणरूप विपत्तिओथी [**अतीतः**] रहित छे, [**त्रिलोकलोकी**] त्रण लोकने जोनारा छे [**विकलः**] शरीर रहित छे (अने) [**अकलङ्कः**] कलंक रहित छे [**सः**]

ते [**देवदेवः**] देवाधिदेव [**मम**] मारा [**हृदये**] हृदयमां [**आस्ताम्**] बिराजमान थाओ।

विशेषार्थ

आ श्लोकमां **'विकल'** विशेषण वपरायेल छे, तेथी आ स्तुति शरीर–रहित सिद्ध भगवंतने करायेली छे एम समझवुं; खरी रीते तो पोते सिद्धावस्था प्राप्त करे तेवी अहीं भावना छे।१५।

परमात्मानी स्तुति चालु :—

क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१६॥

अन्वयार्थ :—[**अशेषशरीरिवर्गाः**] समस्त संसारी जीवोए [**क्रोडीकृताः**] जेमने पोताना मान्या छे अर्थात् अपनाव्या छे ते [**रागादयः**] राग आदि [**दोषाः**] दोषो [**यस्य**] जेमने [**न सन्ति**] नथी, [**निरिन्द्रियः**] (जे) पांच इन्द्रियो अने मनथी रहित छे [**ज्ञानमयः**] ज्ञानमय [**अनपायः**] अविनाशी छे [**सः**] ते [**देवदेवः**] देवाधिदेव [**मम**] मारा [**हृदये**] हृदयमां [**आस्ताम्**] बिराजमान थाओ।

विशेषार्थ

जे, मोह, राग–द्वेषने पोताना माने ते मिथ्यादृष्टि संसारी जीव छे एम आ श्लोकमां कह्युं छे; सम्यग्दृष्टि रागादिने पोताना मानतो नथी, तेथी ते संसारनो अंत करे छे। **मिथ्यादृष्टिपणुं ते ज संसारनुं मूळ छे।** भगवाने ते मूळनो नाश करी भगवत् दशा प्रगटावी छे। सर्व जीवो शक्तिरूपे भगवान छे। जे पोताना तेवा स्वरूपने ओळखी, संसारना मूळरूप मिथ्यात्वने टाळे ते क्रमशः आगळ वधी

पोतानुं परमात्मस्वरूप प्रगट करी भगवान थाय। आ श्लोकमां पोतानुं परमात्मस्वरूप प्रगट करवानी भावना छे।१६।

श्री जिनेंद्रदेवनी स्तुति चालु :—

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥१७॥

अन्वयार्थ :—[**यः**] जे [**विश्वजनीनवृत्तेः**] आखा जगतना पदार्थोमां [**व्यापक**] व्यापक छे, [**सिद्धः**] सिद्ध छे, [**विबुद्धः**] विबुद्ध छे, [**धुतकर्म बंधः**] जेमणे कर्मबंधनो नाश कर्यो छे, [**ध्यातः धुनीते सकलं विकारं**] जेमनुं ध्यान करतां समस्त विकार धणीधणी ऊठे छे [**सः**] ते [**देवदेवः**] देवाधिदेव [**मम**] मारा [**हृदये**] हृदयमां [**आस्ताम्**] बिराजमान थाओ।

विशेषार्थ

१. प्रदेशोनी संख्या अपेक्षाए दरेक जीव असंख्यात प्रदेशी छे अने क्षेत्र अपेक्षाए शरीरना आकारे तेनो वर्तमान आकार होय छे, तेथी क्षेत्र अपेक्षाए जगतना बधा पदार्थोमां केवळी भगवाननो के कोइनो जीव व्यापक नथी, परंतु केवलज्ञानमां क्षेत्र के काळना भेद वगर जगतना सर्व पदार्थो एक समये भगवानने जणाय छे तेथी ज्ञान अपेक्षाए जीवने सर्वगत अथवा सर्वव्यापक कहेवानो व्यवहार छे।

२. कर्मना त्रण प्रकार छे :—१. भावकर्म, २. द्रव्यकर्म, ३. नोकर्म (शरीर आदि); ए त्रणे प्रकारना कर्मोथी रहित एवी जे सिद्धदशा ते प्रगट करवानी भावना आ श्लोकद्वारा करी छे। भावकर्म एटले पोताना विकार भावो; तेनाथी ज जीवने खरेखर

बंध थाय छे; केमके भावकर्म वडे जीवनुं ज्ञान विकारमां अटकी जाय छे; द्रव्यकर्म तो निमित्त मात्र छे। १७।

हवे चार गाथामां परमात्माना शरणनी भावना करवामां आवे छे :–

न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषै,–र्यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

अन्वयार्थ :—[**तिग्मरश्मिः**] सूर्यनुं किरण [**ध्वान्तसंघैः**] अंधकारना समूहवडे [**न स्पृश्यते**] स्पर्शातुं नथी [**इव**] (तेनी) जेम [**यः**] जे [**कर्मकलङ्कदोषैः**] कर्मकलंकरूप दोषोवडे [**न स्पृश्यते**] स्पर्शातो नथी, (अने) [**निरञ्जनं**] जे कर्मरूप अंजनथी रहित छे, [**नित्यं**] नित्य छे [**अनेकं**] गुण, पर्याय अपेक्षाए अनेक, [**एकं**] द्रव्य अपेक्षाए एक छे [**तं आप्तदेवं शरणं**] तेवा आप्तदेवना शरणने [**प्रपद्ये**] हुं प्राप्त थाउं छुं।

विशेषार्थ

आत्माने पोताना स्वभाव सिवाय बीजुं कोई, जगतमां शरणरूप नथी; परंतु ज्यारे राग होय त्यारे सुपात्र जीवोनुं लक्ष वीतराग भगवान प्रत्ये जाय छे तेथी निमित्तरूपे भगवाननुं शरण छे। आ प्रमाणे निश्चय–व्यवहार शरणनुं स्वरूप समझवुं।१८।

अढारथी एकवीश सुधीना चार श्लोकमां व्यवहार शरणनुं स्वरूप कह्युं छे; अने बावीशथी छवीश सुधीना पांच श्लोकमां निश्चय शरणनुं स्वरूप कह्युं छे।

परमात्माना शरणनी भावना चालु :—

विभासते यत्र मरीचिमालि, न विद्यमाने भुवनावभासि।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

अन्वयार्थ:—[**यत्र**] ज्यां [**मरीचिमालि**] सूर्यनो प्रकाश [**न विद्यमान**] विद्यमान न होवा छतां [**भुवन अवमासि बोधमयप्रकाशं**] (त्यां) त्रण लोकने प्रकट जाणनार ज्ञानरूप प्रकाश [**विमासते**] प्रकाशे छे, (अने) [**स्वात्मस्थितं**] जे पोताना आत्मामां सुस्थित छे [**तं आप्तंदेवं**] एवा आप्त देवना शरणने [**प्रपद्ये**] हुं प्राप्त थाउं छुं।

विशेषार्थ

निश्चयथी पोतानो आत्मा ज आप्तदेव छे अने तीर्थंकर देव के सिद्ध भगवंत तो निमित्त मात्र छे ने तेथी ते व्यवहारे आप्तदेव छे। जेवी रीते तीर्थंकरदेव तथा सिद्ध भगवान निश्चयथी पोते पोताना ज आप्तदेव छे तेवी रीते दरेक जीव पण निश्चयथी पोतपोताना आप्तदेव छे एम आ श्लोकमां दर्शाव्युं छे।१६।

परमात्माना शरणनी भावना चालु :—

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तिम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यन्नतं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥२०॥

अन्वयार्थ:—[**यत्र**] ज्यां [**विलोक्यमाने सति**] (ज्ञानमां) देखवा-वडे [**इदं**] आ [**विश्वं**] विश्व—जगत [**विविक्तं**] भिन्नभिन्नपणे [**स्पष्टम्**] अत्यंत स्पष्टपणे [**विलोक्यते**] देखाय छे, (तथा जे) [**शुद्धं**] शुद्ध छे; [**शिवं**] कल्याणरूप स्वरूप छे, [**शान्तम्**] शांत छे (अने) [**अनादि—अनन्त**] अनादि—अनंत छे [**तं आप्तदेवं शरणं**] तेवा आप्तदेवना शरणने [**प्रपद्ये**] हुं प्राप्त थाउं छुं।

विशेषार्थ

१. विश्व=छ द्रव्यो (जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति-काय, आकाश अने काळ) तथा ते सर्वना गुण अने पर्यायो।

२. शिव=उपद्रव्यरहित, कल्याणस्वरूप परमात्मदशा; राग आदि ते उपद्रव छे।

३. शान्त=निराकुलतारूप आह्लाद—आनंद; लोको जेने आनंद के शांति माने छे ते तो आकुलतारूप रति छे अर्थात् दुःख छे।२०।

परमात्माना शरणनी प्रार्थना चालु :—

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिन्ता।
क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपञ्च–स्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥२१॥

अन्वयार्थ :—[तरुप्रपञ्चक्षयः] वृक्ष—समूहनो क्षय **[अनलेन]** अग्निवडे **[इव]** जेम (थाय छे तेम) **[मन्मथमानमूर्च्छाविषादनिद्राभय-शोकचिन्ता]** काम, मान, मूर्च्छा, खेद, निद्रा, भय, शोक, चिन्ता **[येन क्षताः]** जेमणे क्षय कर्या छे **[तं आप्तदेवं शरणं]** तेवा आप्तदेवना शरणने **[प्रपद्ये]** हुं प्राप्त थाउं छुं।

विशेषार्थ

आ श्लोकमां आप्त पुरुषनुं विशेष स्वरूप कह्युं छे अने तेमनुं शरण प्राप्त करवानी भावना करी छे। खरी रीते तो पोताना शुद्धात्म–स्वरूपना ध्यानरूप अग्निवडे पोतामां कामादि विकारो टळी जाओ एवी भावना छे।

सामायिक माटे आसन :—

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः॥२२॥

अन्वयार्थ :—[विधानतः] विधितरीके **[न अश्माः]** न तो शीला **[न तृणं]** न तो घास, **[न मेदिनी]** न तो पृथ्वी **[नो फलको]** न तो लाकडानी पाट, **[संस्तरो]** आसन (तरीके) **[विनिर्मितः]** नियत

थयेल छे—निर्माण थयेल छे [**यतः**] केमके [**निरस्त अक्षकषायविद्विषः**] भावइन्द्रिय, कषाय, द्वेष वगेरे नाश कर्या छे (जेणे एवो) [**सुनिर्मलः**] सुनिर्मळ [**आत्मा**] आत्मा [**एव**] ज (आसन) छे (एम) [**सुधीभिः**] सम्यग्ज्ञानीओद्वारा [**मतः**] मान्य थयेल छे।

विशेषार्थ

१. आ श्लोकमां सामायिकनुं स्वरूप दर्शाव्युं छे। **सम+अय+इक=सामायिक** एटले के जेना वडे आत्मामां रागद्वेषरहित समभावनो लाभ थाय एवो शुद्ध भाव। जे जीवे सम्यग्दर्शन न प्राप्त कर्युं होय ते जीवने आत्माना शुद्ध स्वरूपनी खबर नहि होवाथी ते शुद्ध भावनी प्राप्ति करी शके नहि एटले के तेने सामायिक होय नहि।

२. संस्तर=आसन, कटासन, पाथरणुं। बाह्य वस्तुओ आत्मानुं आसन होई शके नहि, पण आत्मामां स्थिरता प्राप्त करवी ए ज आत्मानुं साचुं आसन—कटासन—पाथरणुं छे एम अहीं कह्युं छे।

३. 'कषाय' नो सामान्य अर्थ मिथ्यात्व अने रागद्वेष थाय छे। घणा जीवो मात्र राग-द्वेषने ज कषाय समझे छे पण ते बराबर नथी। जीव ज्यारे सम्यक्त्व प्रकट करी मिथ्यात्व टाळे छे त्यारे अनंत संसारना कारणरूप अनंतानुबंधी कषाय अर्थात् परवस्तुथी लाभ-नुकसान थाय एवी मान्यतापूर्वक थतां क्रोध, मान, माया, लोभ टळे छे। तेथी ज्यारे सरागसम्यग्दृष्टि जीवो संबंधी 'कषाय' वापरवामां आवे त्यारे ते जीवने चारित्रना दोषथी थता राग-द्वेष छे एम समझवुं।

४. अक्ष=इन्द्रिय; इन्द्रियना बे प्रकार छे। एक द्रव्येन्द्रिय अने बीजी भावेन्द्रिय। तेमां द्रव्येन्द्रियना बे प्रकार छे। १. पुद्गल (जड) इन्द्रिय, २. चेतन द्रव्येन्द्रिय। पुद्गल (जड) इन्द्रिय छे ते तो

(परद्रव्यरूप) पुद्‌गल द्रव्योनो स्कंध छे अने ते आत्माने लाभ-नुकसान करी शके नहि, तेम ज आत्मा तेनो नाश करी शके नहि। जे स्थळे पुद्‌गल इन्द्रिय छे ते ज स्थळे ते पुद्‌गल इन्द्रियना आकारे आत्मप्रदेशोनी रचना होय छे ते चेतन द्रव्येन्द्रिय कहेवाय छे। ते पण आत्माने लाभ-नुकसान करती नथी।

चेतन द्रव्येन्द्रिय द्वारा पर द्रव्योने जाणवानी क्षयोपशमरूप शक्ति ते भावेन्द्रिय छे; आ भावेन्द्रिय जो के आत्माना ज्ञाननो उघाड छे तो पण ते आत्मानो स्वभाव–भाव नथी।

सम्यग्दृष्टि, आत्मानी अपूर्ण अवस्थाने, परमार्थे पोतानी अवस्था तरीके स्वीकारता नथी; तेथी पुरुषार्थवडे क्रमेक्रमे भावेन्द्रियने टाळीने अर्थात् तेना तरफना उपयोगने टाळी निजस्वरूपमां स्थित थई संपूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करे छे।

आ रीते, भावेन्द्रिय, जीवनो स्वभाव–भाव नहि होवाथी अने ते द्वारा थतो वेपार रागद्वेषमय होवाथी ते पर्यायने आत्मानो शत्रु गणीने तेने टाळवानो अहीं उपदेश आप्यो छे।

५. प्रथम सम्यग्दर्शन थतां मान्यतामां भावेन्द्रिय जीताई जाय छे अने त्यार पछी ते सम्यग्दृष्टि जीव पुरुषार्थ वधारी जेटले अंशे रागद्वेष टाळे छे तेटले अंशे भावेन्द्रिय अने कषाय, चारित्र अपेक्षाए हणाय छे। कषाय सर्वथा टाळतां आत्मानी क्षीणकषायी अवस्था प्रगटे छे, अने त्यार बाद अल्पकाळमां केवलज्ञान प्रकट थाय छे त्यारे भावेन्द्रियो सर्वथा हणाइ जाय छे।२२।

बाह्य वासना छोडी आत्मामां लीनता ए सामायिकः—

न संस्तरो भद्र ! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्व्वामपि बाह्यवासनाम्।।२३।।

अन्वयार्थ :—[**भद्र!**] हे भद्र! [**यतः**] ज्यां [**समाधिसाधनं**] समाधि के सामायिकनुं साधन [**न संस्तरो**] नथी आसन (पाथरणुं) (के) [**न लोकपूजा**] नथी लोकनी पूजा [**न संघमेलनम्**] के नथी संघनी संगति, [**ततः**] त्यां [**सर्व्वाम् अपि बाह्यवासनाम्**] सर्वे बाह्यवासनाओ [**विमुच्य**] तजी [**अध्यात्मरतः**] अध्यात्मलीन [**अनिशं**] निरंतर [**भव**] थाओ।

विशेषार्थ

१. *आत्मानो शुद्ध पर्याय ते सामायिक छे।* तेनुं साधन अंतरमां छे; कोई बाह्य पदार्थ नहि। पाथरणुं (कटासन) लोकपूजा के संघ वगेरे बाह्य वस्तुओ सामायिकनुं साधन नथी। माटे ते सर्व तरफथी दृष्टि—लक्ष खेंची आत्मा तरफ वाळवुं अने तेमां स्थिर थवुं ते खरुं—निश्चय—सामायिक छें; एवी सामायिक करवानी अहीं भावना करी छे। निज स्वरूप संबंधी विकल्प बाह्य पदार्थना लक्षे थाय छे तेथी ते बाह्य छे; माटे ते विकल्प छोडी निर्विकल्प स्वरूपमां रत—लीन थवानुं अहीं कह्युं छे।

२. जे सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्रस्वभावरूप परमार्थभूत ज्ञाननुं परिणमन मात्र एकाग्रता लक्षणवाळुं अने शुद्धात्मस्वरूप छे ते ज साची (निश्चय) सामायिक छे; ते मोक्षनुं कारणभूत छे।—जुओ गुजराती समयसार गाथा १५४नी टीका पृ. २००।२३।

मुक्ति माटे आत्मस्वभावमां स्वस्थ थवानो उपदेश :—

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥२४॥

अन्वयार्थ :—[**बाह्याः केचन अर्थाः**] बाह्य कोइ पण पदार्थो

[**मम**] मारा [**न सन्ति**] नथी; [**अहं**] हुं [**कदाचन**] कदापि [**तेषाम्**] तेमनो [**न भवामि**] थइ शकतो नथी; [**इत्थं**] ए प्रमाणे [**विनिश्चित्य**] बराबर निश्चय करीने [**भद्र!**] हे भद्र! [**त्वं**] तुं [**बाह्यं**] बाह्यभाव [**विमुच्य**] संपूर्ण पणे छोडी [**मुक्त्यै**] मुक्ति अर्थे [**सदा**] सदाय [**स्वस्थः**] स्वस्थ [**भव**] था।

विशेषार्थ

१. विकल्प, राग-द्वेष, शुभ-अशुभभाव, शरीर वगेरे पदार्थो अने अन्य जीवो—ए सर्व तारा आत्माथी बाह्य छे; माटे ते तरफनुं ममत्व तजी तारा आत्मा प्रत्ये लक्ष करीने स्थिर था। आथी तारा आत्मामां शुद्ध दशा प्रगटशे।

२. **'विनिश्चित्य'** शब्द एम सूचवे छे के स्व—परना भेदज्ञाननो निश्चय करवानी जीवने खास जरूर छे; स्व—परनुं स्वरूप समज्या विना कदापि भेदज्ञान थाय नहि, अने भेदज्ञान विना कदापि धर्म थइ शके नहि; माटे तेनो निश्चय करी, ते निश्चयने दृढ करवानुं अहीं कह्युं छे।२४।

आत्मध्याननी स्थिरताथी समाधिनी प्राप्ति :—

आत्मानमात्मन्यवलोक्यमान, स्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम्॥२५॥

अन्वयार्थ :—[**आत्मनि**] पोतानामां [**आत्मानम्**] पोताना आत्माने [**अवलोक्यमानः**] अवलोकनार [**त्वं**] तुं [**दर्शनज्ञानमयः**] दर्शनज्ञानमय [**विशुद्धः**] विशुद्ध छे; [**एकाग्रचित्तः**] एकाग्रचित्तवाळो [**साधुः**] साधु [**यत्र तत्र**] गमेत्यां [**स्थितोऽपि**] स्थित होवा छतां पण [**खलु**] निश्चये [**समाधिम्**] समताभावने [**लभते**] प्राप्त करे छे।

विशेषार्थ

पोताना शुद्ध ज्ञाता–दृष्टा (ज्ञायक) स्वभावने ओळखी तेमां जे एकाग्र थाय छे तेने शुद्धता प्रगटे छे।२५।

आत्मानुं अने बाह्य पदार्थोनुं स्वरूप :—

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

अन्वयार्थ :—[**मम**] मारो [**आत्मा**] आत्मा [**सदा**] हमेशां [**एकः**] एक, [**शाश्वतिकः**] शाश्वत, [**विनिर्मलः**] विशेष निर्मळ (अने) [**साधिगमस्वभावः**] ज्ञानस्वभावमय छे, [**अन्य**] अन्य [**समस्ताः**] सर्व [**बहिर्भवाः**] बहार रहेला पदार्थो [**न शाश्वताः**] शाश्वत नथी, [**कर्मभवाः**] कर्म निमित्त मात्र छे तथा [**स्वकीयाः**] स्वयं पोतपोताथी छे।

विशेषार्थ

आत्मा शुद्धज्ञान स्वभावी छे, आत्माथी भिन्न जे पर पदार्थो छे ते सर्वे पोतपोताना कारणे पोतानी अवस्था धारण करे छे। ते पर पदार्थो जीवने कांइ लाभ–नुकसान करी शकता नथी; अने आत्मा तेमने कांई करी शकतो नथी। माटे परथी लाभ–नुकसान थाय छे एवी मान्यता प्रथम छोडी दई जे जीव पोताना आत्माना शुद्धज्ञान मात्र स्वभावनो निर्णय करे छे ते ज पोताना आत्मामां स्थिरतारूप सामायिक प्रगट करी शके छे एम आ श्लोकमां दर्शाव्युं छे।२६।

आत्मानुं परथी भिन्नपणुं विचारे छे :—

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथक् कृते चर्मणि रोमकूपाः कुंतो तिष्ठन्ति शरीरमध्ये॥२७॥

अन्वयार्थ :—[**यस्य**] जेने [**वपुषा सार्द्धं अपि**] शरीर साथे पण [**ऐक्यं**] ऐक्य—एकपणुं [**न अस्ति**] नथी [**तस्य**] तेने [**पुत्रकलत्रमित्रैः**] पुत्र, पत्नी के मित्र साथे [**किं अस्ति**] (ऐक्य) केम होई शके ? [**चर्मणि**] चामडी [**पृथक् कृते**] पृथक्—जुदी कर्ये [**शरीरमध्ये**] शरीरमां रहेला [**रोमकूपाः**] वाळना छिद्रो [**कृतः**] केवी रीते [**हि**] पण [**तिष्ठन्ति**] रही शके ?

विशेषार्थ

१. ज्यां शरीर ज आत्मानुं नथी तो पछी शरीरना आश्रये गणातां सगासंबंधी आत्माना क्यांथी गणाय ? शरीरथी आत्मानुं भिन्नपणुं दृढ करवा माटे शरीरनी चामडी अने वाळना छिद्रोनुं दृष्टांत आप्युं छे। शरीर अने तेना आश्रये गणातां सगांसंबंधी वगेरे ताराथी जुदां छे; तेथी तुं तेमनुं कांइ करी शके नहि अने तेओ तारुं कांइ करी शके नहि; आवी मान्यता दृढ करीने आत्मामां स्थिर थवानुं आ श्लोकमां दर्शाव्युं छे।

२. अत्यारे ज शरीर माराथी जुदुं छे; हुं तेनुं कांइ करी शकतो नथी, तेने हलावी—चलावी शकतो नथी एम जेओ मानता नथी तेओ आत्माने अने शरीरने एक माने छे तेथी तेओने कदी सामायिक थाय ज नहि।२७।

आत्माने बाह्य संयोगना लक्षे दुःख थाय छे एम हवे कहे छे :–

संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, पिपासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्।।२८।।

अन्वयार्थ :—[**यतः**] जो [**शरीरी**] शरीरधारी जीवो [**जन्मवने**] जन्मरूप वनमां [**संयोगतः**] संयोगना लक्षे [**अनेक भेदं**] अनेक प्रकारना [**दुःखं**] दुःख [**अश्नुते**] भोगवे छे, [**ततः**] तो

[**आत्मनीनाम्**] आत्मानी [**निर्वृत्ति**] निर्वृति (शांति—आनंद) [**पिपासुना**] इच्छनाराओए [**त्रिधा**] मन—वचन—कायाना जोडाणथी हठी [**असौ**] आ संयोगना लक्षने [**परिवर्जनीयः**] छोडवुं जोइए।

विशेषार्थ

१. जीव अनादिथी सुखनो उपाय चूकी गयेल होवाथी अज्ञानभावे जन्म धारण करीने रखडे छे। अहीं जन्मने वनना उपमां आपी छे। जीव अज्ञानदशामां पोतानो स्वभाव चूकी पर ऊपर लक्ष करे छे अने तेमनाथी पोताने लाभ—नुकसान थाय एम ते माने छे। जे पर पदार्थो ऊपर पोते लक्ष करे छे ते पर पदार्थो 'संयोग' कहेवाय छे। संयोगथी लाभ-नुकसान थाय एवी ऊंधी मान्यतानी पकडने लीधे पर पदार्थोने इष्ट—अनिष्ट मानीने तेना ग्रहण—त्याग करवानी आकुळता जीव सेवे छे; पर वस्तुओ संबंधी इच्छानो सतत् प्रवाह जोशभर चलावे छे ते ज दुःख छे, अने ते विकार होवाथी, अनेक प्रकारनुं होय छे। ओछी आकुळता (पुण्य-भाव) पण खरेखर दुःख ज छे, छतां अज्ञानभावे तेने सुख मानी जीव भ्रमणा सेवे छे अने तेना फळरूपे जन्मरूप वनमां चक्कर मार्या करे छे।

२. ते दुःख टाळवा माटे स्ववस्तु अने पर वस्तुना स्वरूपने जाणी, यथार्थ भेदज्ञान करी, परतरफनुं लक्ष छोडी, स्वतरफ वळवुं जोइए। एम करे तो ज जीवनुं दुःख मटे छे; ते सिवाय कोइपण अन्य उपाये दुःख मटे नहि।

प्रश्न—पुण्यथी दुःख मटे के नहि ?

उत्तर—ना; कारण के पर प्रत्येना लक्ष विना पुण्य थाय ज नहि; जो परना लक्षथी दुःख मटतुं होत तो आ जन्म वनमां मिथ्यादृष्टिने लायक बधां पुण्य, जीवे कर्यां छतां दुःख अने जन्म

एम ने एम ऊभा रह्यां छे। आथी सिद्ध थाय छे के पुण्य, दुःख मटाडवानो उपाय नथी एटले के पुण्यथी धर्म थाय के ते धर्मने सहायक थाय एम नथी। आ रीते पुण्य–पाप रहित निज स्वभावनो निर्णय करी, त्रिकालशुद्ध चैतन्यस्वरूप तरफ वळया विना कदी धर्मनी शरुआत थाय नहि ने दुःख मटे नहि। अज्ञानी पुण्यने धर्मनुं परंपरा कारण माने छे ते मिथ्या मान्यता छे; अज्ञानीने पुण्य सर्व अनर्थनुं परंपरा कारण थाय छे एम श्री पंचास्तिकायनी १६७मी गाथा अने तेनी टीकाओमां कह्युं छे।

३. आत्मामांथी खसी, मन–वचन–काया तरफनुं जोडाण थया विना परलक्ष थाय नहि; सम्यग्दृष्टिने, अभिप्रायमांथी प्रथम मन–वचन–काया तरफनुं जोडाण सर्वथा टळी जाय छे अने पछी स्वरूप स्थिरतावडे जेम जेम चारित्र दोष टळतो जाय छे तेम तेम मन–वचन–काया तरफनुं जोडाण छूटतुं जाय छे। आ ज सुख प्राप्त करवानो साचो उपाय छे एम आ श्लोकमां दर्शाव्युं छे।२८।

विकल्प जाळ तोडीने आत्मामां लीन थवानो उपदेश :—

सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकान्तारनिपातहेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे॥२९॥

अन्वयार्थ :—[संसारकान्तारनिपातहेतुम्] संसाररूप दुर्गम जंगलमां भटकाववानी हेतुरूप [**सर्वं विकल्पजालं**] सर्व विकल्प जाळ [**निराकृत्य**] हठावी–तोडी [**विविक्तम्**] सर्वथी भिन्न [**आत्मानम्**] आत्माने [**अवेक्ष्यमाणः**] अवलोकी [**त्वं**] तुं [**परमात्वतत्त्वे**] परमात्मतत्त्वमां [**निलीयसे**] लीन था।

विशेषार्थ

हुं परनुं करी शकुं अने पर मारुं करी शके अथवा एक

बीजाना निमित्त थई शकीए एम जे माने तेने मिथ्या विकल्पनी जाळ कदी तूटे नहि अने आत्मानुं लक्ष थाय नहि। ते विकल्प–जाळ तोडवानो उपाय आ श्लोकमां दर्शाव्यो छे। पोते स्वआत्माने बधाथी भिन्न अवलोकवो; एम आत्मावलोकन करतां पर अने पुण्य प्रत्येनो विकल्प तूटी जाय छे। पोतानी अवस्थामां थतां पुण्य–पापरूप विकार आत्मानुं स्वरूप नथी तो शरीर वगेरे जे प्रत्यक्ष जुदां छे ते आत्माना कइ रीते थइ शके? न ज थइ शके। माटे परथी अने विकारथी भिन्न (एवा) पोताना सिद्ध समान परमात्मतत्त्वमां लीन थवानो अभ्यास करवो। ए अभ्यासवडे संसाररूप वनमां रखडावनार विकल्प जाळनो नाश थाय छे। २९।

पुण्य–पाप अनुसार संयोगनो संबंध थाय छे एम कहे छे :—

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

अन्वयार्थ :—[**पुरा**] पूर्वे [**यत्**] जे [**कर्म**] कर्म [**आत्मना स्वयं**] स्वयं आत्मा वडे [**कृतं**] करायेल होय [**तदीयं**] तेनुं ज [**शुभ–अशुभम्**] शुभ–अशुभ [**फलं**] फल [**लभते**] ते (आत्मा) पामे छे। [**यदि**] जो [**परेण दत्तं**] पारकाए आपेलुं (शुभाशुभ फळ) [**लभते**] आत्मा पामे [**तदा**] तो [**स्वयं कृत**] पोते ज करेलुं [**कर्म**] कर्म [**निरर्थकम्**] व्यर्थ जाय (ए) [**स्फुटम्**] प्रगट छे। ३०।

विशेषार्थ

१. आ श्लोकमां कह्युं छे के :—चेतन के अचेतन कोई पण पर पदार्थो आत्माने सुख–दुःख आपी शकता नथी। माटे परथी मने लाभ-नुकसान थाय ए मान्यता एकदम छोडी देवी। आत्माने जे कांई शुभाशुभ संयोग–वियोगनो संबंध थाय छे ते, पोते करेला

पुण्य-पाप अनुसार थाय छे। पण ते संयोग–वियोग सुख दुःख आपी शकता नथी। संयोग-वियोगमां इष्ट-अनिष्टनी कल्पना ते दुःखनुं कारण छे।

२. श्री प्रवचनसारना बीजा अध्यायनी २४ मी गाथामां कह्युं छे के :—

एसो त्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिष्फलो परमो॥२४॥

अर्थ :—रागादि अशुद्ध परिणतिरूप विभावथी उत्पन्न थती जीवनी क्रिया-मोहक्रिया-अफळ नथी पण संसाररूप फळने आपनार होवाथी सफळ छे; परंतु सम्यग्दर्शनपूर्वक स्थिरतारूप परम धर्म निष्फळ छे, अर्थात् ते नरनारकादि संसारपर्यायरूप फळथी रहित छे। माटे मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणति प्रथम छोडवी।

३. शरुआतमां **'पुरा यत् कर्म आत्मना स्वयं कृतम्'**–पूर्वे जे कर्म आत्माए पोते कर्यां छे' एम कह्युं छे त्यां पूर्वे कर्म बांधवामां जीवना विकारनुं निमित्तपणुं हतुं एटलुं बताववा माटे छे। जीवे पूर्वे विकारभाव करतां जे कर्म बंधाया ते आत्माए पोते कर्यां छे एम व्यवहारे कहेवामां आवे छे। खरी रीते आत्मा जड कर्म करी शकतो नथी। केमके आत्मा चेतन द्रव्य छे अने जड कर्म अनंत पुद्गल अचेतन द्रव्यो छे।

४. **'स्वयं कृत कर्म निरर्थकम्'**–आ पदनो अर्थ समझवानी जरूर छे। जीव पोते जे भाव करे ते निश्चये स्वयंकृत कर्म छे; अने ते भावकर्मनो कर्ता, भोक्ता जीव एक ज समये (ते भाव करती वखते ज) थाय छे। शुद्ध भाव करे तो शुद्ध भावनो अने अशुद्ध भाव करे तो अशुद्ध भावनो कर्ता तथा भोक्ता ते ज समये जीव

थाय छे, अर्थात् ते भावकर्म निरर्थक नथी। जीव ज्यारे अशुद्ध भाव करे त्यारे निमित्तनैमित्तिक संबंधना कारणे जे नवां कर्मो जीव साथे एकक्षेत्रवगाहपणे बंधाय छे ते पण उपचारथी 'स्वयंकृतकर्म' कहेवाय छे।

५. जडकर्म बे प्रकारना छे। १. घाति, २. अघाति; तेमां घाति कर्म निरर्थक जता नथी तेनो अर्थ ए छे के तेना उदय समये जेटले दरज्जे जीव तेमां जोडाय तेटले दरज्जे आत्मामां विकारी भाव थाय; ते घाति कर्मनो भोगवटो उपचारथी थयो कहेवाय छे अने तेटले दरज्जे ते कर्म निरर्थक न थाय एम कहेवुं ए पण उपचार छे।

जो जीव स्वपुरुषार्थथी ते कर्मना उदयमां जेटले अंशे न जोडाय तेटले अंशे ते कर्म निर्जरी जाय। ज्यारे जीवे विकार न करवारूप जे पुरुषार्थ कर्यो त्यारे ते कर्मनो उदय निर्जरारूप थयो, ते रीते ए कर्मनो भोगवटो जीवे कर्यो एम उपचारथी कहेवाय छे। अघाति कर्मना उदय समये बाह्य संयोग-वियोगनो संबंध थाय छे। जीव तेनो ज्ञाता-दृष्टा रहे तो सुखी थाय अने संयोग-वियोगमां इष्ट–अनिष्टनी कल्पना करे तो दुःखी थाय। आ रीते स्वयंकृत कर्म निरर्थक नथी एवो आ पदनो अर्थ समझवो। ३०।

आत्मस्वरूपमां अनन्यपणानो उपदेश :—

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥३१॥

अन्वयार्थ :—[**देहिनः**] जीवना [**निजार्जितं**] पोताना उपार्जन करेलां [**कर्म विहाय**] कर्म सिवाय [**कः अपि**] कोइपण [**कस्य अपि**] कोइने पण [**किंचन**] कांइपण [**न ददाति**] आपतु नथी

[**एवम**] एम [**विचारयत्**] विचारी [**परः**] पर—अन्य [**ददाति**] आपे छे [**इति**] एवी [**शेमुषीम्**] बुद्धि [**विमुच्य**] छोडी [**अनन्यमानसः**] आत्मावडे पोतानुं अनन्यपणुं विचारवुं।

विशेषार्थ

१. एकद्रव्य अन्य द्रव्यनुं कांईपण करी शकतुं नथी ए सिद्धान्त अहीं प्रतिपादन कर्यो छे। माटे कोइ पर मने सुख—दुःख, सगवड—अगवड के धन—मकान वगेरे कांइपण आपी शके ए मिथ्याबुद्धि छोडवी।

२. पूर्वे करेलां विकारी भावोनुं निमित्त पामीने स्वयं आवेलां जडकर्मो पण तने कांई करी शकता नथी; ज्यारे पर वस्तुनो संयोग—वियोग थवानो होय त्यारे कर्मनी उदयरूप हाजरी होय एटलो संबंध जाणी लेवो। परंतु जीवना भावमां कर्मनो उदय कांइपण करी शकतो नथी। जो आ प्रमाणे यथार्थ जाणे तो ज जीव पोतानामां एकाग्र थई शके। जड कर्म उदयमां आवी जीवने फळ आपे एम कहेवुं ते व्यवहारकथन छे। अहीं एटलो ज अर्थ समझवो के परवस्तुनो संयोग—वियोग स्वयं पोतपोताथी थाय छे, मात्र तेने अनुकूळ अघाति कर्मनो उदय ते समये स्वयं उदयरूपे होय छे; जीव ते समये स्वलक्ष चूकी संयोगनुं लक्ष करे तो विकार थाय अने ते वखते घातिकर्मनो उदय थयो कहेवाय। जो जीव स्वलक्षमां रहीने विकार न करे तो ते ज घातिकर्मोनी निर्जरा थई एम कहेवाय। आ रीते जीवना भावनो आरोप कर्ममां आवे छे। आत्माना भाव आत्मामां छे अने कर्मनी ते वखतनी अवस्था तो कर्ममां ज छे ते आत्म प्रदेशथी छूटा पडवारूपे ज छे; ते कर्मो आत्माने कांइ करतां नथी। एम जाणी कर्मोनी अने संयोगनी दृष्टि छोडी पोतानुं पोताथी अनन्यपणुं विचारी, पोताना आत्मस्वरूपमां

दृष्टि करी एकाग्र थवुं एम आ श्लोकमां कह्युं छे।३१।

आत्मध्यानथी मुक्तिनी प्राप्ति :—

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शाश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते॥३२॥

अन्वयार्थ :—[**अमितगतिवन्द्यः**] (आ पुस्तिकाना कर्ता अमितगति आचार्यद्वारा अथवा तो अपार ज्ञानसंपन्न गणधरादिद्वारा वंदित [**सर्व विविक्तः**] सर्वथी भिन्न [**भृशम् अनवद्यः**] अत्यंत निर्दोष [**परमात्मा**] परमात्मा [**यैः**] जे (भव्य जीवो) द्वारा [**शाश्वत्**] निरंतर [**मनसि**] एकाग्रचित्ते [**अधीतः**] ध्यावाय छे [**ते**] ते जीवो [**विभववरं**] उत्कृष्ट वैभवी [**मुक्तिनिकेतं**] मुक्तिनिवासने [**लभन्ते**] पामे छे।

विशेषार्थ

त्रिकाळशुद्ध निजात्मा ज ध्यान करवा योग्य छे। अने तेनुं फळ मुक्ति छे, एम अहीं कह्युं छे। पण ए खास ध्यान राखवुं के प्रथम शुद्धात्मानुं स्वरूप जाण्या विना तेनुं ध्यान थई शके नहि। माटे मोक्षार्थीओए प्रथम शुद्धात्मस्वरूप जाणवुं ने पछी शुद्धात्मानुं ध्यान करवुं। आत्मानी ओळखाण विनानुं ध्यान तो ससलानां शिंगना ध्यान करवा समान मिथ्या छे। केटलाक जीवो आत्मस्वरूप समज्या विना जे ध्यान करे छे ते, धर्मध्यान नथी परंतु ते तो मूढतानी वृद्धि करनार ध्यानाभ्यास छे। माटे निज शुद्धात्मस्वरूप यथार्थ समझवा जीवे कटिबद्ध थवुं योग्य छे।३२।

अंतिम मंगळद्वारा सामायिकनुं फल :—

इति द्वात्रिंशतैर्वृत्तैः परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगतचेतस्को यात्यसौ पदमव्ययम्॥३३॥

अन्वयार्थ :—[**इति**] आ प्रमाणे [**द्वात्रिंशतैर्वृत्तैः**] बत्रीश श्लोको द्वारा [**यः**] जे [**अनन्यगतचेतरकः**] एकाग्रचित्त चैतन्य (आत्मा) [**परमात्मानम्**] परमात्माने [**ईक्षत्ते**] जुए छे—अनुभवे छे (ते) [**असौ**] आ [**अव्ययम् पदम्**] अविनाशीपद–मोक्ष प्रत्ये [**याति**] जाय छे।

विशेषार्थ

आ श्लोको मात्र मुखथी बोली जवाना नथी, परन्तु तेना अर्थ समझी तेना भावनुं भासन थवानी जरूर छे। माटे तेना भाव समझी पोताना त्रिकालशुद्ध अखंड चिदानंद परमात्मस्वरूपना श्रद्धा–ज्ञान करी, तेमां ज लक्ष करी, स्थिर थवुं ते सामायिकनुं प्रयोजन छे अने तेनुं फळ सिद्धिपदनी प्राप्ति छे।३३।

❀

दंसण मूलो धम्मो

श्री जैन मुमुक्षु महिला मंडळ, देवलाली